१.मानव का देव और विश्व का देव

सरिता के प्रवाह पर लाठी पटकने पर उस सरिता की अखंड धारा क्षण भर दो भागों में बँटी हुई प्रतीत होती हैं। संध्या के समय अखंड आकाश के बीच कोई तारिका चमकने लगते ही उस अखंड आकाश को एक गणन बिंदु प्राप्त हो जाता हैं और उसके चारों ओर चार दिशाएँ तुरंत अलग-अलग भासित होने लगता हैं।

इस पदार्थ-जगत् में भी मानव के ज्ञान का सितारा चमकने लगता हैं उसके दो भाग हो जाते हैं। संपूर्ण विश्व, अनंत के एक छोर से दूसरे छोर तक एकदम विभाजित हो जाता हैं। सुंदर और कुरूप, सुगंध और दुर्गंध, मंजुल और ककर्श, मृदुल और कठोर, प्रिय तथा अप्रिय, अच्छे और बुरे, दैवी और आसुरी इन सभी द्वंद्वों का उद्भव बस मनुष्य को समस्त विश्व का केंद्र या मध्य बिंदु माननेसे हो जाता हैं। मानव को एक हिस्सा सुखद तथा अन्य दुःखद लगता हैं। पहला अच्छा और दुसरा बुरा।

विश्व के मानव के लिए सुखद और अच्छा हिस्सा जिसने निर्मित किया वह देव और मानव को दुःख देनेवाला बुरा भाग जिसने बनाया वह राक्षस।

मानव की ही लंबाई-चौडाई की नाप से विश्व की उपयुक्तता, अच्छाई-बुराई यदि नापी जाए तो उपर्युक्त निष्कर्ष को गलत नहीं मान सकते।

विश्व की उपयुक्तता को इसी प्रकार अपने हिसाब ने नापना मनुष्य के लिए अनिवार्य हो गया था। मानव उपलब्ध पंच ज्ञानेंद्रियों से ही विश्व का रुप, रस, गंध, स्पर्शदि समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता हैं। विश्व के समस्त पदार्थों की गिनती करना, उनका पृथ्थकरण करना, पुन: ये घटक गिनना, अमर्याद क्रियाओं की पुनः-पुनः सूची बनाना और इस प्रक्रिया द्वारा विश्व के असीम महाकोष के पदार्थों की गिनती करना असंभव हैं; यह जानकर हमने प्राचीन तत्त्वज्ञों ने अपने पंच ज्ञानेंद्रियों से ही इस विश्व के संबंध में जो ज्ञात हुआ उसका पांच विभागों में वर्गीकरण करना ही उत्कृष्ट मार्ग समझा। यह बात स्वाभाविक ही थी। यह उनकी अप्रतिम बुद्धि की उस समय की आश्चर्यजनक विजय थी। ज्ञानेंद्रिय केवल पाँच ही होने के कारण विश्व के समस्त पदार्थ उन पाँचों में से किसी एक या अनेक गुणों के होंगे। अर्थात् उन पाँच गुणों के तत्त्वों ने, पंचमहाभूतों ने ही उनका निर्माण किया होगा। इस विश्वदेव का हमसे जो कुछ संवाद होना संभव हैं, वह उसी पाँच मुखों से ही होगा। अतः वह विश्वदेव महादेव पंचमुखी हैं।

अपनी ज्ञानेंद्रियों से विश्व के गुणधर्मों का आकलन करने का मानव का यह प्रयत्न जितना अपरिहार्य और सहज था उतना ही स्वयं के अंतःकरण से उस विश्व निर्माता देव के अंतःकरण की कल्पना करने का मनुष्य का प्रयत्न भी सहज और स्वाभाविक था। मानव को सुख प्रदान करने के लिए किसी दयालु देवता ने इस सृष्टि

का निर्माण किया होगा इस मानवी निष्ठा का प्रबल समर्थन कदम-कदम पर, प्रतिक्षण, जब चाहे तब यह सृष्टि देवी करती रही और आज भी कर रही हैं।

सचमुच, मनुष्य की सुख-सुविधाओं के लिए उस दयालु देव ने इस सृष्टि की रचना कितनी ममता से की हैं। यह सूर्य, ये समुद्र, कितने प्रचंड हैं ये महाभूत। परंतु मनुष्य की सेवा के लिए भगवान ने उन्हें भी प्रस्तुत किया। देर तक खेलने के बाद बच्चे दोपहर में प्यास से परेशान होकर आएँगे, यह जानकर और उस समय उन्हें शीतल और मीठा जल प्राप्त हो इस हेतु से सुबह ही उनकी माताएँ कुएँ से पानी निकालकर मिट्टी के बरतनों में रखती हैं, ठीक उसी प्रकार ग्रीष्म काल में नदियों का पानी सूख जाता हैं इसलिए पहले ही सूर्य भगवान समुद्र का पानी अपनी किरण रुपी रस्सियों से खींचकर मेघों में संगृहित करता हैं और समुद्र का खारा पानी मीठा बनाकर पृथ्वी पर भेजता हैं, जिससे देवता भी ईर्ष्या करने लगते हैं। सूर्यदेव समुद्र का खारा जल मीठा बनाते समय इतनी सावधानी अवश्य रखता हैं की समुद्र का संपूर्ण जल ही मीठा न हो जाए। केवल एक वर्ष के लिए आवश्यक जल ही मीठा बनाकर रखने की शक्ति सूर्य-रश्मियों में होती तथा संगृहित करने की शक्ति मेघों में होती हैं, नहीं तो समस्त समुद्र का जल मीठा बन जाता और मनुष्य को नमक ही नहीं मिलता जिससे उसका गृहस्थाश्रम ही फीका हो जाता।

देखिए इन पशुओं को, जो मनुष्य की सेवा और सुख के लिए आवश्यक समझकर निर्माण किए गए हैं। पशु विविध तथा आवश्यकतानुसार बुद्धिमान होते हैं। मरूस्थल में मनुष्य के लिए जहाज समान, पेडों के काँटे खाकर और बिना पानी के कई माह तक चलते रहने की कला जिसे सिखाई गई, ऐसा ऊँट देखिए। वह घोडा कितना चपल। उसपर सवारी करनेवाले मनुष्य को रण-मैदान में भी सँभालकर ले जाने और मनुष्य के साथ अत्यंत प्रामाणिकता से रहने की बुद्धि उसे भगवान ने दी हैं। परंतु मनुष्य के उपर की सवारी करने की बुद्धि उसे नहीं दी। अब गाय देखिए, उसके सामने एक तरफ सूखी घास खाने के लिए डाली जाए और दूसरी और उसी घास से बना हुआ ताजा और जीवनप्रद दूध बरतन भर-भरकर लिया जाए। ऐसा यह आश्चर्यकारक रासायनिक यंत्र जिस भगवान ने बनाया हैं, वह भगवान सचमुच कितना दयालु होगा। और वह पुराना यंत्र टूटने पर नया यंत्र बनाने का श्रम भी मनुष्य को न करना पडे, इसलिये उसी यंत्र में नये यंत्र तैयार करने की अजब व्यवस्था भी की हैं।

गेंहूँ का केवल एक दाना बोने पर उसके सौ दाने तैयार होते हैं। आम रस, स्वाद, सत्त्व से भरपूर देवफल। आम इतना उपजाऊ की एक बीज बोते ही उसका वृक्ष बनकर प्रतिवर्ष हजारों आम्रफल देता हैं। यह क्रम वर्षानुवर्ष से चल रहा हैं। एक आम से उत्पन्न लाखों फल खाने के उपरांत भी मनुष्य को आम्रफल का अभाव न हो, अतः आम्रवृक्ष की डालियों की कलमें लगाकर उनकी अमराइयाँ बनाई जाने का प्रबंध इस दुनिया में भगवान ने ही कर छोडा हैं। एक कण से मन भर चावल, बाजरा, ज्वार आदि नाना प्रकार की सत्त्वपूर्ण फसलें, एक बीज डालकर एक-एक पीढी को सहस्त्राधिक फल उपलब्ध करनेवाले ये वृक्ष जैसे कटहल, अननस, अंगूर, अनार आदि

और घास के समान तुरंत उगनेवाली रुचिकर, बहुगुणी, विविध रसों से पूर्ण शाक-सब्जी, फल-सब्जी जगत् में उपलब्ध हैं। गन्ना जो संपूर्ण मीठा हैं, शक्कर के पाक से भरा हुआ और इतना उपलब्ध होता हैं की मनुष्य की अपनी आवश्यकता समाप्त होने पर वह उसे बैलों को खिला देता हैं। जगत् में इस प्रकार हर चीज की निर्मिति करके भगवान ने मानव पर इतनी असीम कृपा की हैं की यह ऋण उतरना असंभव हैं।

वैसे ही मनुष्य देह की यह रचना। पाँव के तलुवों से लेकर मस्तिष्क के मज्जातंतु के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पिंडों तक इस शरीर की रचना मनुष्य को सुखद होगी, इस प्रकार सृष्टि करते समय भगवान ने जो एक-एक बाल की चिंता रखी हैं, उसकी बात कहाँ तक सुनाऊँ? मनुष्य की आँख की बात लें, उसे कितने युगों से, कितने प्रयोगों के बाद, कितने निरंतर प्रयास करके आज जो आँख हैं वैसी तू बना पाया हैं। प्रथम प्रकाश के किंचित संवादी ऐसा एक त्वग बिंदु, प्रकाश को नहीं, अपितु केवल उसकी छाया को जाननेवाला, अँधेरा और प्रकाश इतना ही जाननेवाला वह त्वग् बिंदु, उसमें प्रयोग करके, बार-बार परिवर्तन करके आज की यह सदर आँख, महत्त्वाकांक्षी आँख भगवान तूने बनाई। मनुष्य की इसी महत्त्वाकांक्षी आँख से उसकी दूरदृष्टि टपक रही हैं, इसलिए हे भगवन तेरी कला द्वारा तुझे पराजित करने के लिए दूरबीन के प्रतिनेत्र निर्माण करके वह तुम्हारे आकाश की प्रयोगशाला का ही अंतरंग देखना चाहता हैं। इतना ही नहीं अपितु तुम्हें भी उस दूरबीन में पकड कहीं प्रत्यक्ष देखने का प्रयोग कर रहा हैं। और उस मानव की आँखों को प्रसन्न करने हेतु संदुरता का और विविध रंगोंका महोत्सव भगवान तूने त्रिभुवन से शुरू किया हैं, उसकी झाँकी का क्या वर्णन करें? यह पारिजात का सुकोमल फूल, वह सोनचंपा का सुगंधमत्त सुमन। यह मयूर एक-एक मोरपंख की बनावट, उसके रंग, उसमें चमक और उसका नटना। आदि-कलावंत। अनेक मोरपंखों का पुच्छ फैलाकर जब आनंद से उन्मत्त होकर मोर नाचता हैं, तब हे भगवान, तेरी ललितकला कुशलता देख मैं कृतकृत्य हो जाता हूँ। वाह। धन्य देव, धन्य तेरी वाह। ऐसे उद्गार करते हुए मेरा हृदय भी नाचने लगता हैं। और ऐसी पुच्छ मनुष्य को क्यों नहीं दी, यह सोचकर मन नाराज भी होने लगता हैं। इस प्रकार नयनरम्य रंग और श्रवणीय मधुर सुर निकालनेवाले शताधिक पक्षी इस दुनिया में आनंदविभोर होकर मंजुल ध्वनि कर रहे हैं। गुलाब, चमेली, बकुल, जाईजुई, चंपा, चंदन, केतकी, केवडा के वन में फूलों की वर्षा हो रही हैं। और सुगंध से सारा आसमान सुवासित हुआ हैं। मानवों में ये प्रीतिरति और मानस सरोवर में कमलिनी, कमुदिनी प्रफुल्लित हो रही हैं। जिस दुनिया में रात्रि में तारकाएँ हैं, उषाकाल गुलाबी हैं। तारूण्य प्रफुल्लित हैं, निद्रा गहरी आती हैं, भोगोमें रूचि हैं, योग में समाधि हैं, इस प्रकार हे भगवान्, यह जग तूने हमारे लिए सुखमय बनने दिया, बनने दे रहा हैं, इसलिए तूने हमारे सुख हेतू ही ऐसा होने दिया-ऐसा हम क्यों न सोचें? हमें जैसी हमारे संतान के प्रति ममता हैं इसलिए हम उसके सुख की चिंता करते हैं, उसी तरह तू भी हमारे सुख के लिए इतना चिंतित रहता हैं, तब निश्चय ही तुमको हम मनुष्यों से ममता होनी ही चाहिए। भगवान, हम मानव तेरी संतानें हैं। तुम हमारी सच्ची माता हों। माँ को भी दूध आता हैं, तेरी कृपा से। हम मनुष्य तेरे भक्त हैं और भगवान, तुम हम मनुष्यों के देव हो।

इतना ही नहीं, तू केवल हम मनुष्यों के देव हो और हमारा तेरे सिवाय दूसरा देव नहीं। यह सारा जगत तूने हमारी सुख-सुविधा के लिए ही बनाया हैं।

मनुष्य की इच्छा से मिलती-जुलती यह विचारधारा सत्य से मिलती हुई रह सकती थी। यदि इस दुनिया की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक स्थिति मनुष्य के लिए उपकारक और सुखदायी होती। परंतु दुर्भाग्य से सारी दुनिया की बात तो रहने दो, मनुष्य प्रारंभ में जिस पृथ्वी को स्वाभाविक रूप से संपूर्ण जगत ही मानता था, जिस पृथ्वी को विश्वंभरा, भूतधात्री ऐसे नामों से अभी भी गौरवान्वित करता हैं, उस पृथ्वी पर भी वस्तुजात या वस्तुस्थिति मनुष्य को संपूर्णतः अनुकूल नहीं, इतना ही नहीं, अपितु इसके विपरीत अनेक प्रसंगों में मारक ही हैं।

जिस सूर्य और समुद्र के उपकार का स्मरण करते हुए उनके स्तोत्र गाए गए वह सूर्य और वह समुद्र ही देखो। धूप से तप्त होकर चक्कर खानेवाले पथिक पर लाठी के दो-चार वार लगते ही, अर्धमृत होने पर, हम जैसे अंतिम चोट करके साँप को नष्ट कर देते हैं वैसे ही यह सूर्य अपनी प्रखर किरणों से अंतिम चोट लगाकर मनुष्य को उसी जगह पर मार देना नहीं भूलता। जिस भारत में लाखों ब्राह्मण उस सूर्य को सुबह-शाम अर्घ्य देने के लिए खडे होते थे, उसी भारत में उसी धार्मिक काल में भी बारा बारा साल चलने वाले के दुर्भिक्ष को बार-बार उत्पन्न कर सूर्य अपनी प्रखर आँखों से लाखों जीवों को जीते-जी जला देता हैं। कुरान के तौलिद में भक्त पैगंबर ने प्रशंसा की हैं की मनुष्य के लिए हे भगवन, तूने कितनी असंख्य मच्छलियाँ, कितना रूचिकर अन्नसंग्रह इस समुद्र के पेट में रखा हैं। परंतु वही समुद्र मनुष्य को निगलनेवाले अजस्त्र मगरों को और प्रचंड हिंस्त्र मछलियों को भी बिना पक्षपात के पाल रहा हैं। मानवों की नौकाएँ अपनी पीठ पर ले जाते-जाते समुद्र अचानक उन्हें अपनी पीठ पर से ढकेलकर अपने जबडों में पकडता हैं और तुरंत निगल लेता हैं। हजारों मानवों से ठसाठस भरीं हुई नौकाएँ या प्रचंड टाइटेनिक जहाज भी नष्ट कर देता हैं, ठीक वैसे ही जैसे मानव समूह के साथ यात्रा करनेवाले लुटेरे, पथ-दर्शक का स्वाँग रचकर चलते हैं और गहन वन में पहुँचते ही, उन्हीं स्त्री-पुरूषों पर हलमा कर उन्हें लूटते हैं और उनकी गरदन काटते हैं। कोई राक्षस स्त्री क्रोधित होने पर एकाध बच्चे की गरदन नदी के पानी में दबाकर उसका प्राण निकलने तक अंदर ही पकडकर रखती हैं। कोई हिंस्त्र मगर, दो-तीन सुंदर कुमारियों को, जब वे नदी में उतरकर सकुचाते हुए स्नान कर रही हों, उनके ककडी के समान कोमल पैरों को अपनी दाँतों से पकडकर झटके-दे-देकर तुरंत निगल जाएगा। परंतु यह गंगामाई, जमनाजी, देव नदी जार्डन, यह फादर टेम्स हजारों कुमारियों की, उनकी बाल-बच्चों की गरदन जैसे एक ही गरदन हो, अपने जल के अंदर उनके प्राण-पखेरू उडने तक दबाकर रखेगी ओर नगर के नगर निगल जाएँगी।

इंजिल, कुरानादि ग्रंथों में बडे भोले भक्तिभाव से लिखा हैं की बकरा, मुरगी, खरगोश, बकरी, हिरण-ये नानाविध प्राणी इसलिए बनाए गए हैं ताकि मनुष्य को विपुल मात्रा में मांस उपलब्ध हो। हे दयालु भगवान्, तुम्हारे उन

भक्तों को इस बात का क्यों विस्मरण हो जाता हैं की उपर्युक्त प्राणियों का रूचिपूर्ण मांस खानेवाले इन मानवों का भी भक्षण करनेवाले सिंह, बाघ, चीता जैसे प्राणी उसी भगवान ने बनाए हैं। 'हे भगवान् तूने छोटे-छोटे कोमल बालक, मनुष्य को फाडकर खाने के बाद हमारी मुखशुद्धि हेतु प्राप्त हों, इसलिए बनाए हैं' यह मनुष्य को चीर-फाडकर खाने के बाद उनकी हड्डियों पर बैठकर सिंह और भेडियों के रक्तरंजित मुख से निकलती प्रशंसा भरी कृतज्ञता भी उसी भगवान को प्राप्त होती। एशिया और अफ्रिका खंडों को जोडनेवाले भूखंड जिस दिन महासागर में, उस खंड पर खडी वरमालाएँ हाथों में ली हुई लाखों कुमारियाँ, दूध पीते बच्चों के साथ माताएँ, अर्धभुक्त प्रणयीजन, भगवान को पुष्पांजलि अर्पित करनोले भक्तों के साथ, उन देवाताओं की जहाँ स्तुती हो रही हैं ऐसे देवालयों के साथ, इस प्रकार डुबो दिए जैसे गणेश मूर्तियाँ पानी में विसर्जित की जाती हैं। उसके दूसरे दिन वेदों ने जिनका गान किया हैं ऐसी उषा मधुर हास्य करती हुई उस सन्नाटा छाए हुए दृश्य को भी देख रही थी। कुरान के अनुसार चंद्र की निर्मिति भगवान ने इसलिए की हैं की मानव को नमाज पढने के समय का ज्ञान हो, परंतु जो-जो नमाज पढ रहे थे उन मुसलमानों का, मुल्ला मौलवियों का कत्ल करके और खलीफा के घराने को मिट्टी में मिलाकर, उन लाखो लोगों के कटे हुए नरमुंडों पर चढकर नमाज का कट्टर शत्रु चंगेज खाँ जिस दिन शांति से बैठा, उस रात को भी बगदाद नगरी में यही चंद्रमा चंगेज खाँ को समय का क्षण-क्षण गिनाकर शांति से चांदनी फैला रहा था।

ये सुगंधित पुष्प, ये सुस्वर पक्षी, मनोहर पुच्छ फैलाकर नृत्य करनेवाले सुंदर मयूरों के झुंड, जंगल के जंगल अकस्मात आग में जलाकर, चूल्हे में बैंगन भूनते हैं, वैसे फडफड करते-न-करते उनते में ही जलाकर राख बना देता हैं-वह कौन हैं? गाय जिसने हमें दी, वह दयालु हैं तो वही गोशाला में भगवान के भोग के लिए दुध दूहने आई व्रतस्थ साध्वी स्त्री को काट उसके प्राण लेनेवाला साँप का निर्माण करनेवाला कौन हैं? हर एक भोग के पीछे रोग लगे रहते हैं। हर बाल के पीछे दर्द देनेवाले फोडे, नाखूनों की बिमारियाँ, दाँतों के रोग, वह कराह, वे वेदनाएँ, वह दर्द, वह छूत और महामारियाँ, वह प्लेग, वह अतिवृष्टि, वह अनावृष्टि, वे उल्कापात। जिसकी गोद में विश्वास से अपनी गरदन रख दी वह धरती, अचानक उलटकर मनुष्य से भरे प्रांत-के-प्रांत पाताल लोक में ढकलनेवाले और गायब करनेवाले वे भूकंप? और कपास के ढेर पर जलती हुई मशाल गिर जाए वैसे ही इस पृथ्वी के बदन पर गिरकर एकाध घास के ढेर के समान फटाफट जलानेवाले घातक धूमकेतू का निर्माण किसने किया?

यदि इस विश्व की संपूर्ण वस्तु जाति के मूल में उन्हें धारण करनेवाली, चालना देनेवाली या जिसके क्रम विकास के परिणाम हो रहे हैं, ऐसी जो शक्ति हैं उसे देव कहना हो तो उस देव ने यह सारा विश्व मनुष्य को उसका मध्य बिंदु मानकर केवल मनुष्य की सुख-सुविधाओं के लिए बनाया हैं, यह भावना एकदम भोली, अज्ञानी और झूठी हैं-ऐसा समझने के सिवाय उपर्युक्त विसंगति का अर्थ नहीं लगता।

किस हेतु से या निर्हेतुकता से यह प्रचंड विश्व प्रेरित हुआ? इसका तर्क मनुष्य को करना संभव नहीं। जो जाना जा सकता हैं वह इतना ही की मनुष्य तो इस विश्व के देव की गिनती में भी नहीं हैं। जैसे कीडे, चींटियाँ, मक्खियाँ वैसे ही इस अनादि-अनंत काल की असंख्य गतविधियों से यह मानव भी एक अत्यंत अस्थायी और तुच्छ परिणाम हैं। उसे खाने को मिले इस हेतु से अनाज नहीं उगता, फल नहीं पकते। अनाज होता हैं इसलिए वह उसे खा सकता हैं। बस इतना ही। उसे जल मिलना चाहिए इसलिए नदियाँ नहीं बहतीं। नदियाँ बहती हैं, अतः उसे पानी मिलता हैं, इतना ही। धरती पर जब केवल मगर ही थे तब भी सरिताएँ बहती थीं, पेडों पर फूल खिलते थे। लताएँ खिलती थी। जब पृथ्वी भी नहीं थी तब भी यह सूर्य आकाश में, आज के तरह ही, बिना रोकटोक घुमता था। एक जुगनू के मर जाने पर धरती को जितना अभाव पडेगा उतना भी अभाव सूर्य को अपने सभी ग्रहोपग्रह के साथ खो जाने पर इस सुविशाल विश्व को नहीं होगा। ऐसे सौ सूर्य भी किसी छूत की बिमारी में हर दिन मरने लगे तो भी एक पल का भी शोक इस विश्व के भगवान को नहीं होगा।

फिर भी जिस किसी हेतु से या हेतु रहित विश्व की जगत्-व्याप्त गतविधि चल रही हैं, उसमें एक अत्यंत तात्कालिक और अत्यंत तुच्छ परिमाण की दृष्टि से मनुष्य को, उसकी लंबाई-चौडाई के गज से नाप सके तथा उसकी संख्या में गिनती कर सके, इतना सुख और इतनी सुविधाएँ मिलती हैं, यह और इतना ही केवल इस विश्व के देव का मानव पर किया हुआ उपकार हैं। मनुष्य को इस जगत् में जो सुख मिल सकता हैं इतना भी उसे न मिले, ऐसी विश्व रचना इस विश्व के भगवान ने की होती तो उसका हाथ कौन पकडता? यह सुगंध, ये सुस्वर, ये मुख स्पर्श, यह सौंदर्य, ये सुख, ये रूचियाँ, ये सुविधाएँ हैं और वे भी पर्याप्त मात्रा में हैं। जिस योगायोग के कारण मनुष्य को ये सब मिल रहे हैं, उस योगायोग को शतशः धन्यवाद हैं। जिन विश्व-शक्तियों ने जाने-अनजाने ऐसा योगायोग उत्पन्न किया उन्हें उस हिस्से के लिए मनुष्य का देव कहने का समाधान हम मान सकेंगे। इस प्रकार उक्त भक्ति का फूल चढाकर उसकी पूजा कर सकेंगे।

परंतु इससे अधिक इस विश्व के भगवान से, मार्ग के भिखारी का सम्राट् से संबंध जोडने जैसा लाचार संबंध जोडने का लोभ मनुष्य को पूर्ण रूप से छोड देना ही उचित होगा। क्योंकि वह सत्य हैं। अपना भला भगवान करेगा, और भगवान भला करेगा तो मैं सत्यनारायण की पूजा करूँगा, यह आशा या अवलंब एकदम नासमझी हैं। क्योंकि वह बिलकुल असत्य हैं। संकटों से भगवान ने छुडाया, इसलिए हम सत्यनारायण की पूजा करते हैं, परंतु उन संकटों में पहले आपको ढकेलता कौन हैं? वही सत्यनारायण, वही देव। जो पहले गरदन काटता हैं और बाद में उसे मलहम लगाता हैं। मलहम लगाने के लिए उसकी पूजा करनी हो तो पहले गरदन क्यों काटी ऐसा उससे पूछना नहीं चाहिए क्या? विश्व के अंग में ये दोनों भावनाएँ बिना कारण और असमंजस की हैं।

वह विश्व की आदिशक्ति जिन निर्धारित नियमों के अनुसार व्यवहार करती हैं उसके वे नियम, जो समझ में आएँ उन्हे समझकर मनुष्यजाति के हित में उनका जितना हो सकें उपयोग करना ही मनुष्य के हाथ में हैं।

मनुष्यजाति के सुख को अनुकूल वह अच्छा और प्रतिकूल वह बुरा ऐसी नीति-अनीति की स्पष्ट मानवी व्याख्या की जानी चाहिए। भगवान को प्रिय वह अच्छा और मनुष्य के लिए सुखदायी वह भगवान को प्रिय लगता हैं-ये दोनों समझ उचित नहीं, क्योंकि वे असत्य हैं। विश्व में हम हैं, परंतु विश्व अपना नहीं। बहुत कम अंश में वह हमें अनुकूल हैं या बहुत अधिक अंश में वह हमें प्रतिकूल हैं। ऐसा जो हैं उसे ठीक तरह से, निर्भयता से, समझकर उसका बेधडक मुकाबला करना, यही सच्ची भद्रता हैं, और विश्व के देव की सही-सही पूजा हैं।

२.दो शब्दों में दो संस्कृतियाँ

यूरोप या अमेरिका में कदम रखते ही कोई अर्थपूर्ण शब्द हमें आज सुनाई देता हो तो वह हैं अप-टू-डेट अत्याधुनिक। अगर हम किसी मामूली बूट पॉलिश की डिब्बी खरीदने जाएँ तो दुकानदार तुरंत कहेगा की यही डिब्बी खरीदो। यही क्यों? ऐसा पूछते ही वह कहेगा की यह अप-टू-डेट हैं इसलिए। दरजी के यहाँ जाएँगे तो शर्ट का, कोट का, जाकिट का, चोली का, लहँगे का उत्तम-से-उत्तम नमुना बताएगा और कहेगा यह एकदम अप-टु-डेट (अत्याधुनिक) हैं, इसलिए खरीद लीजिए। उत्तम यंत्र यानी अप-टु-डेट, अप-टु-डेट पुस्तक ही उत्तम पुस्तक, अप-टु-डेट पोशाक, अप-टु-डेट जानकारी, अद्यावत् सुविधाएँ यानी उन पदार्थों का सर्वोत्कृष्ट प्रकार। जो मानव अप-टु-डेट नहीं वह बेढंगा हैं, इस प्रकार की अत्याधुनिकता वहाँ पर बूटों के बंद से लेकर बिजली के बटन तक दिखाई देगी। उनकी कल की बंदूक से आज ही बेहतर होगी, कल के विमान से आज का विमान अधिक अच्छा होगा। परसों लंदन के एक छोर के कमरे में बैठकर लंदन के दूसरी ओर के कमरे में बैठे हुए व्यक्ति आपस में दूरध्वनि से बात करते थे और कल लंदन के कमरे में बैठा हुआ व्यक्ति स्कॉटलैंड के घर में बैठे हुए व्यक्ति से बात करने लगा। और आज लंदन के उसी कमरे में बैठकर अमेरिका में बैठे हुए अपने मित्र से बात करके सुबह का बाजार-भाव पूछता हैं और तुरंत मुंबई से बात करके अपने दलाल को उसकी जानकारी देता हैं। इस प्रकार उनका आज उनके कल के आगे लगातार दौडता हैं, कल पीछे रहकर बेकार हो जाता हैं। उनका प्रत्येक आज उनके कल से अधिक समझदार, पुष्टिकर, सरस हो रहा हैं। इसलिए उनका कल पर का विश्वास हटकर आज पर अटल हो रहा हैं। इतना दृढ विश्वास की आज के यूरोप-अमेरिका के जीवन का, संस्कृति का, प्रवृत्ति का मुख्य लक्षण यदि किसी एक शब्द में स्पष्ट किया जाता हो तो वह शब्द हैं-अत्याधुनिक या अप-टु-डेट। आज के यूरोप-अमेरिका की संस्कृति का विशेष नाम हैं अप-टु-डेट, अत्याधुनिक।

परंतु हमारे हिंदू राष्ट्र में आज भी हमारी मनोभूमि में गहरी जडे जमाकर जो संस्कृति बैठी हैं और जो हमारे समस्त जीवन में व्याप्त हैं उस संस्कृति का मुख्य लक्षण किसी एक शब्द में व्यक्त करना हो तो वह शब्द हैं, श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त। अप-टु-डेट के एकदम विपरीत। कोई भी वस्तु, पद्धति, चाल, ग्रंथ, ज्ञान सर्वोत्कृष्ट क्यों हैं ऐसा किसी यूरोपियन से पूछेंगे तो तुरंत एक शब्द में कहेगा की वह अप-टु-डेट हैं इसलिए। परंतु कोई भी ज्ञान, ग्रंथ, चाल, पद्धति, सुधार ग्राह्य या अग्राह्य, उचित या अनुचित यह तय करने के लिए हम यह नहीं देखेंगे की वह उपयुक्त हैं, या नहीं। इन बातों का विचार न करते हुए हम एकदम जो सोचेंगे, पूछेंगे वह यह हैं की वह श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त हैं या नहीं। हमारी संस्कृति का अतिशय लज्जास्पद भूषण जो हम पालते हैं वह यह हैं की वेदों में जो बताया हैं उसके आगे हम गत दस-पाँच हजार वर्षों में भी सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक विधिनिषेध में या कुशलता में किंचित् मात्र भी आगे नहीं बढे हैं। पुरा युरोप ये सोचं रहा हैं की मैं कल के आगे आज गया या नहीं, कुछ अधिक सीखकर कुशल हुआ हूँ या नहीं, बाप से सवाई हुआ या नहीं; हम सारे कल के

तो छोडो ऐहिक काल के भी आगे नहीं गए। बल्की गत पाँच हजार वर्षों में हमारे ग्यान में बिलकुल वृद्धी नाही हुई इस बात पर गर्व करते हैं। बाप को जो ज्ञात नहीं था, वह मुझे ज्ञात हो ऐसा कुछ नया सीखेंगे तो बाप का बडप्पन कैसे कायम रहेगा? यही हमारा डर हैं। हमारे पूर्वज त्रिकालज्ञानी थे और उनके ग्यान के विपरीत कुछ सीखना उनके त्रिकालबाधित ज्ञान का अपमान होगा यह हमारी प्रतिज्ञा है। अतः ऐसा पाप अपनों से तो नहीं हो रहा? उनको जो अज्ञात था वह हमें ज्ञात तो नहीं हो रहा, यह हमारी चिंता का विषय बना हैं। वेदकाल में जिस बैलगाडी में बैठकर हमारी संस्कृति चल रही थी उसी बैलगाडी में बैठकर इस रेलगाडी के युग में वह र र र आवाज करती हुई चल रही हैं। यह हमारी श्रृतिस्मृतिपुरोणोक्त प्रवृत्ती प्राचीन काळ से आज तक लगातार चलती आ रही हैं। जन्म से मरण तक जो-जो आचार या निर्बंध मनुस्मृति जैसी आद्य स्मृति में कही गई हैं, वे आचार या निर्बंध, युक्तता आधार पर नहीं अपितु मुख्यतः 'एष धर्मः सनातनः' नामक एक प्रकार की राजमुद्रा को ठोककर ही हम स्वीकारते हैं। वह बात श्रृतिस्मृतिपुरोणोक्त हैं इतनाही एक मुख्य कारण आगे किया जाता हैं। लहसुन क्यों नहीं खाना चाहिए, उसका कारण किसी परिस्थिति में वैद्यकीय दृष्टि से हितकर हैं या नहीं, इसका परीक्षण न करते हुए केवल 'एष धर्मः सनातनः' ऐसा कहकर उसका पालन किया जाता हैं। दिन में मलमूत्रोत्सर्ग उत्तराभिमुख करना चाहिए और रात को दक्षिणाभिमुख ऐसा क्यों? बस 'एष धर्मः सनातनः'। हमारे प्रथम श्रीमान मनु राजर्षि की सत्ता से अंतिम रावबाजी की राजसत्ता तक राज्य-व्यवहार में भी अनेक महत्त्वपूर्ण जातीय या राष्ट्रीय समस्याओं के जो निर्णय लादे गए, वे निर्णय बदलती स्थिति में उपयुक्त हैं या नहीं-इसकी बिलकुल जाँच न करते हुए केवल उपर्युक्त एकमेव राजमुद्रा लगाकर कहते थे की नया करना नहीं। पुराना नष्ट करना नहीं। शिवछत्रपति या शाहू छत्रपति, पहले बाजीराव और अंतिम बाजीराव, इनके अभिलेख के सैकडों निर्णय-पत्रों में यह वाक्य, सभी विवाद एकदम बंद करनेवाले ब्रह्मवाक्य के समान कहाँ-कहाँ, किस प्रकार दिखाई देता हैं, यह इतिहासकारों को ज्ञात हैं। पुराना बाधक बनने लगा, सडने लगा, इसलिए जो वाद, संघर्ष, संकट उत्पन्न हो गए उन्हें समाप्त करने के लिए आधार फिर वही वाक्य 'पुराना नष्ट करना नहीं और नया शुरू करना नहीं'। इसी सूत्र द्वारा युगानुयुग निपटारे करने के कारण पुराना अधिकाधिक बाधक बनता गया, सडता गया। यह आज भी चल रहा हैं। फिर भी आज स्पर्शबंदी, रोटीबंदी, समुद्रबंदी आदि जिन सामाजिक रुढियों ने हिंदू समाज को प्राय नष्ट कर दिया, उन रुढियों को समाप्त करने की बात निकालते ही फिर अपने को सनातनी ही नहीं अपितु सुधारक कहनेवाले भी इस रुढि को या उसके उन्मूलन को शास्त्राधार हैं क्या-इस एक समस्या से व्याकुल होकर ग्रंथ पर ग्रंथ लिख रहे हैं। शास्त्रार्थ की वही अर्थहीन चर्चाये विद्वत परिषदों में पुन: पुन: चल रही हैं। मनु राजर्षि का तो 'एष धर्मः सनातनः', शाहू राजर्षि का 'पुराना तोडना नहीं, नया करना नहीं' और आज के ब्रह्मर्षि का 'इसे शास्त्राधार हैं क्या?' ये तीनों व्यक्ति जिस एक ही पुरूष के मानो औरस पुत्र हैं वह पुरूष यानी श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त ही हैं। सही माने में हमारी हिंदू संस्कृति की पूर्वापार विशेष प्रवृत्ति कौन सी, लक्षण कौन सा, महासूत्र कौन से यह बात एक शब्द में, अपवाद छोडकर, व्यक्त करनी हो तो वह

शब्द हैं श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त। आज की यूरोपीय संस्कृति का जो प्रमुख लक्षण, अत्याधुनिक हैं उसके एकदम विपरीत। वे पूजक हैं 'आज' के, और हम पूजक हैं 'कल' के। वे नए के पूजक, तो हम पुराने के। वे ताजा के भोक्ता, हम बासी के भोक्ता। कुल मिलाकर देखें तो उनकी संस्कृति अत्याधुनिक और हमारी पुरातन।

इस अत्याधुनिक और पुरातन संस्कृति के आज के स्पष्ट उदाहरणस्वरूप यद्यपि हमने यूरोपीय तथा भारतीय जनपदों का ही उल्लेख किया हैं तो भी वास्तविक रूप से यह अद्यावतता या पुरातनता किसी एक जनपद का या जाति का अपरिहार्य गुणधर्म न होकर वह प्रमुख रुप से एक तत्त्व का गुण हैं। अपरिवर्तनीय शब्दनिष्ठ धर्म और प्रत्यक्षनिष्ठ, प्रयोगक्षम और प्रयोगसिद्ध विज्ञान की भिन्न प्रवृत्ति के ये भिन्न नाम हैं। जो-जो धर्मग्रंथ अपौरूषेय समझा गया उसमें समाविष्ट संस्कृति भी सहज ही अपरिवर्तनीय समझी जाती हैं। जो लोग इन धर्मग्रंथों की सत्ता अपने पर चलने देते हैं वे श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त के या पुरातन मत के पक्के दास हो बैठते हैं। इन धर्मग्रंथों की मर्यादा के बाहर वे एक कदम भी नहीं रख सकते। इन धर्मग्रंथों की जब प्रथम रचना की जाती हैं तो वे प्रथम किसी एक सुधार का समर्थन करने हेतु ही लिखे गए होते हैं, और अपना व्यक्तित्व ईश्वरीय शक्ति से जोडकर अपनी रचना अपरिवर्तनीय मानने लगते हैं तथा जल्द ही सुधार के कटु विरोधी बन जाते हैं। इन ग्रंथों के दो पृष्ठों के अंदर यद्यपि वे समस्त विश्व और समस्त काल को बंद करने का मूर्खतापूर्ण हठ करते हैं। परंतु सदैव चंचल, सदा नई, अदम्य और अमोघ निसर्गशक्ति तथा कालगति इन धर्मग्रंथों के दो पृष्ठों में निरंतर बंद थोडे ही रह सकती हैं? ईश प्रेषितों का या प्रत्यक्ष ईश्वर का मनगढंत हस्ताक्षर कर यद्यपि ये धर्मग्रंथ प्रकाशित किए जाते हैं तो भी भूकंप, ज्वालामुखी, जलप्रलय, वज्राघात आदि को इन पोथियों के ताडपत्रों में लपेटकर रखने का उनका प्रयास व्यर्थ जाता हैं। एक भूकंप भी उनके भूगोल को सहज ही नष्ट कर देता हैं। उनकी पवित्र नदी को ज्वालमुखी एक घूँट में ही पी जाता हैं। उन्हे ज्ञात खंड प्रदेश नष्ट हो जाते हैं। ईश्वर के नाम से अवतीर्ण ग्रंथों के शब्दों की साख रखने में ईश्वर को थोडी भी रूचि या आवश्यकता है, यह बात इन ईश्वरी उत्पातों में नही दिखाई देती। उनके भूगोल की जो स्थिति होती हैं वही उनके इतिहास की भी। वेदों का दाशराज्ञ युद्ध यानि पंजाब जैसे राज्य के एक जिले जितने दस राज्यों की तनातनी। उसे उस समय के आर्य राष्ट्र के बाल्यकाल में इतना महत्त्व मिला की अग्नि, सोम, वरूण की प्रार्थनाएँ, करूणा की प्रार्थना और सहायता के लिए सूक्तों की रचना की गई। और देवताओं को भी पक्ष-विपक्ष में बंटना पडा।

यही बात क्रिश्चियन, यहूदी, पारसी, मुसलमान आदि के अपौरूषेय ग्रंथी की और उनके समय के इतिहास की। उन ग्रंथों के रचना काल में उनकी जातियों के लिए यह सब प्रसंग अत्यंत महत्त्वपूर्ण लगना स्वाभाविक था, फिर भी आज के त्रिखंड में मोरचे बाँधकर लढनेवाले लाखों सैनिकों के प्रचंड महायुद्धों के मान के समक्ष उन मुट्ठी भर लोगों का संघर्ष कुछ भी नहीं हैं। आज के जगत्व्यापी साम्राज्यों की तुलना में उनके वे क्षुद्र राज्य और राजधानियाँ तुच्छ ठहरती हैं। ग्रंथों में इनका इतना गौरव किया हैं की इन ग्रंथों को ईश्वरप्रणीत,

त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ और त्रिकालाबाधित समझना हास्यास्पद लगता हैं। उन धर्मग्रंथों के वर्णनानुसार उन देव-देवताओं को वे राजा, उनकी राजधानियाँ, वे राष्ट्र इतने रक्षणीय लगते थे की उनकी सुरक्षा के लिए उन्होंने ईश्वरीय सूक्त और देवदूतों की सेनाएँ भेजी थीं, तो फिर उनके बिना भी दुनिया चल सकती हैं ऐसा उसी ईश्वर को बाद में क्यों लगा। आज वह बैबीलोन के जार की राजधानी कहाँ हैं? वह इजराइल का स्वर्ण मंदिर, वे असीरियन, वे खाल्डियन, वे पारसी, वे क्रोधी मोलाक देवता के मंदिर, वे सब गए कहाँ? रघुपतेः क्व गतोत्तर कोसला? यदुपतेः क्व गता मथुरा पुरी?

प्रकृति और काल, स्वयं को अपरिवर्तनीय और त्रिकालाबाधिक समझनेवाले धर्मग्रंथों के ताडपत्रों का चूर्ण करके स्वच्छंद दंगा करते हैं। फिर भी इन ग्रंथों के आगे कदम रखना ही नहीं, ऐसी मूर्खता करनेवाले लोगों की संस्कृति, उनके धर्मग्रंथों की प्राचीन संस्कृति की अपेक्षा, कभी भी अधिक विकसित नहीं हो सकती। यह क्या अलगसे बताना होगा?

जब तक बाइबिल को अपरिवर्तनीय और अपौरूषेय मानते थे तब तक यूरोप भी ऐसा ही श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त पुरातन प्रवृत्ति के कुएँ का मेंढ़क बनकर पडा हुआ था। पृथ्वी गोल हैं यह नया सत्य आविर्भूत होते ही, वह प्रमाणित करने के लिए, इसी यूरोप नें प्रयोगसिद्ध तथ्यो के बजाय 'बाइबिल में वैसा लिखा हैं क्या?' इतनाही सवाल पूछा था। पृथ्वी गोल हैं यह बात श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त हैं क्या? यदि बाइबिल में पृथ्वी सपाट मैदान के समान हैं, ऐसा लिखा हैं तो पृथ्वी को वैसा ही होना चाहिए। कोलंबस ने अमेरिका भूखंड ढूँढ लिया। तब भी ऐसे किसी भूखंड का, ईश्वर प्रदत्त सर्वज्ञ, त्रिकालाबाधित बाइबिल में उल्लेख नहीं हैं, अतः वह हो नहीं सकता-ऐसी धर्माज्ञा इसी यूरोप ने की थी। पोप कैसा भी बर्ताव करने पर अस्खलनीय ही होगा, यह यूरोप की कभी दृढ श्रद्धा थी; मृत व्यक्ति कितना ही पापी हो, पैसे देकर लाई गई पोपकी सिफारिश चिट्ठी प्रेत के हाथ में रखकर गाडने पर उसके लिए स्वर्ग के द्वार अवश्य खुलते हैं। इस प्रकार श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त निष्ठा से लाखों प्रेतों के हाथों में ऐसी लाखों चिट्ठियाँ इसी यूरोप के कबरीस्थान खोदनेपर दिखाई देंगी।

जो बात यूरोप के क्रिश्चियन लोगों की वही बात मुसलिम जगत् की। यूरोप ने पुरातन वृत्ति को नकारा और कडे संघर्ष के बाद आज वह वैज्ञानिक अत्याधुनिक प्रवृत्ति का समर्थक हैं। परंतु कमाल पाशा का तुकिस्थान छोड कर शेष मुसलिम जगत्, हिंदू जगत् के ही समान, आज भी इस बाबा वाक्यं प्रमाणम् का बंदा गुलाम हुआ हैं। इसलिए हिंदू के समान मुसलमान भी यूरोप के उस वैज्ञानिक, अद्यावत् संस्कृति के सम्मुख लगातार निराश और हतप्रभ हो रहा हैं। यही स्थिति पारसी तथा ज्यू लोगों की हैं।

इस लेख में प्रमुख रूप से अपने हिंदू राष्ट्र के संबंध में ही कहना हैं। अतः धार्मिक और वैज्ञानिक याने पुरातन और अत्याधुनिक यह जो दो प्रवृत्तियों का विवरण किया है, उनकी सामान्य चर्चा यहीं त्यागकर हम इतना ही कहना चाहते हैं की श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त के पिंजडे में हमारे समान गलती करनेवाले सभी फँसते आए हैं, परंतु

दुसरे भी फसते है इस आधार पर हमारा भी उसी पिंजडे में रहना क्षम्य हैं, सहज हैं-ऐसा समझना सरासर गलत होगा। हम जिसे अपौरुषेय और त्रिकालाबाधित मानते आए हैं वह धर्मग्रंथ आज के समस्त उपलब्ध धर्मग्रंथों में पुरातन, पाँच हजार वर्ष पूर्व के भी मान लें तो भी पाँच हजार वर्ष पिछडा हैं। दुनिया पाँच हजार वर्ष आगे बढ गई हैं। परंतु आज के वैज्ञानिक ग्यान से उसी पुराने ग्रंथों का पुरातन ग्यान श्रेष्ठ मानने का हमारा दृढ संकल्प, पाँच हजार वर्ष के पिछडापन आज भी जन्मतिथि से लेकर मृत्युतिथि को किस प्रकार से चिपककर बैठा हैं यह स्पष्ट करने के लिए इस धार्मिक-पुरातन प्रवृत्ति की अंधपरंपरा के दो-चार उदाहरण मार्गदर्शन हेतु विचार में लेते हैं।

प्रथम अपनी यज्ञ संस्था को ही देखें। अत्यंत शीत प्रदेश में अग्नि का सहचर्य सुखकारक होता हैं। ऐसे किसी शीत प्रदेश में और शीत काल में, यज्ञ संस्था ने जन्म लिया। उस काल में घर-घर में अखंड अग्निहोत्र और समय-समय पर प्रज्वलित होनेवाले बडे-बडे यज्ञ आरोग्यप्रद और सुखप्रद होते होंगे। परंतु आजकल के भारत की असहृय उष्णता में इस अग्निपूजा से किसी भी प्रकार का भौतिक हित पूरा नहीं होता। इस प्रकार की आग घर-घर और गाँव-गाँव में जलाकर रखना दुःखदायी ही होता हैं। प्राचीन काल में अग्नि जलाने के साधन भी सुलभ नहीं थे। वनों में पेड पर पेड घिसकर अग्नि प्रज्वलित होती हुई देखकर प्राचीन मानव को कृत्रिम अग्नि उत्पन्न करने की विद्‌या ज्ञात हुई। उसका उपयोग यज्ञ संस्था में होना सहज ही था। परंतु बाद में उसपर धार्मिक छाप पडने के कारण, जब अग्नि माचिस की लकडी के गुल में भी सँभालकर रखी जा सकती हैं फिर भी यज्ञ की पवित्र अग्नि कहते ही अत्यंत प्राचीन और अत्यंत अज्ञानी पद्धति से ही, मंत्रपूर्वक लकडी पर लकडी घिसकर अग्नि प्रदीप्त हो, ऐसी हृदयद्रावक प्रार्थनाओं से साथ जलाना पडता हैं। लकडी और चकमक इन अज्ञानी साधनों के अलावा अग्नि प्रज्वलित करने का एक भी साधन गत पाँच हजार वर्षों में हम ढूँढ नहीं पाए। यूरोप ने माचिस की खोज की, बिजली निकाली, दीपज्योतिः नमोस्तुते आदि करूणापूर्ण प्रार्थना न करते हुए लाथ मारकर भी बटन दबानेपर तुरंत तेजस्वी प्रकाश देनेवाली बिजली को दासी बनाया। परंतु हम- श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त पवित्र अग्नी लकडी पर लकडी घिसकर जलाना अनिवार्य समझते हैं। पिछडे ग्रंथ को त्रिकालाबाधित मानने वाले को पिछडा ही रहना पडता हैं। अग्नि देवता हैं। 'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः' ऐसी प्राचीनों की भावना थी। इसलिए वे अग्नि में मनों घी डालते थे यह बात तो समझ में आती हैं। फिर भी अब हजारो वर्षों के बाद अनुभव से यह निश्चित हुआ हैं की अग्नि का नैसगिक गुण क्रोध करने पर न बढता हैं, उसे प्रसन्न करने पर न शांत होता हैं। घृत की सतत धार पकडकर 'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् देव वसुनानि विद्‌वान्' ऐसी प्रार्थना करनेवाले यजमान के घर वही यज्ञ की अग्नि समय आनेपर उसी घर को भस्म करने से नहीं चूकती। इस प्रकार यज्ञ की अग्नि हमेशा प्रज्वलित रनहेवाले भारत देश में, दस वर्ष में जितने अकाल हुए उतने पैसे की माचिस में अग्नि को बंद करनेवाले यूरोप में सौ वर्षों में भी नहीं हुए। यज्ञमंत्र और पर्जन्यसूक्त गा-गाकर भारतवासियों का गला सूख गया तो भी इस धार्मिक विचार को पर्जन्य भीख नहीं डालता। किंतु रूस ने पर्जन्य का वैज्ञानिक सूक्त ढूँढतेही

अब कोई भी, वर्षा ऋतु न होते हुए भी, पर्जन्य को बुलाए तो पर्जन्य जरूर उनके चरणों में गिर पडता हैं। विमान किसी दूर की नदी से जल खींच लेता हैं, और फिर चाहे जिस खेत पर किसी जल से भरे हुए बादल के समान वर्षा करता हैं। ऐसे अनुभव के उपरांत अब उस यज्ञ संस्था का हमें विसर्जन नहीं करना चाहिए क्या? यदि थोडा दूध उफनता हैं या घी की कटोरी तिरछी हो गई तो बहू को सास दोष देती हैं, ऐसी स्थिति में मनों घी हम लोग समारोहपूर्वक अग्नि को अर्पित करते रहते हैं। कारण? कारण इतना ही हैं की वैसा करना श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त हैं। उस यज्ञ संस्था का आर्यावर्त पर जो प्राचीन काल में अनंत उपकार हुए, उसके संबंध में कृतज्ञता व्यक्त करके अब इसके आगे उस अग्नि में घी का एक भी बूँद न डालते हुए बुद्ध के समान वह सारी यज्ञ सामग्री और वह यज्ञकुंड गंगा में विसर्जन करना उचित हैं। यज्ञात्भवति पर्जन्यः, यह सूत्र छोडकर अब विज्ञानदेव पर्जन्यः यह सूत्र नई स्मृती में लिखना चाहिए।

वैसे ही शंकराचार्य की पालकी! पालकी और बैलगाडी इन वैदिक काल के वाहनों के बाद गत पाँच हजार वर्षों में हम नया वाहन निर्मित नहीं कर पाए। विज्ञाननिष्ठ यूरोप ने तीन शतकों में अब तक तीन सौ प्रकार के वाहन ढूँढ निकाले। दुचाकी, मोटर, रेलगाडी, विमान और अब सायकल जैसे पाव से चलने वाले विमान-हर व्यक्ति स्वयं आकाश में उडने की स्थिति में हैं। परंतु हमारे शंकराचार्य चार व्यक्तियों के कंधे पर बैठकर ही शोभा यात्रा निकालते हैं। ग्राम तक यात्रा मोटर से होगी। परंतु गाँव में पाद्यपूजा हेतु निकलते ही मोटर पाखंड मानी जाती हैं। उस श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त पालकी में बैठकर दिन में ही श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त मशाल जलाते हुए जाएँगे। प्राकृत जनों को रात को दिखता नहीं, मशाल लगती हैं। परंतु सकलशास्त्र पारंगत लोगों को दिन में भी मशाल के बिना नहीं दिखता। और मशाल भी वही धुएँवाली होनी चाहिए. उसमें अधिक तेजस्वी बिना धुएँ की बिजली पर चलनेवाली नहीं चलेगी। क्योंकि वह श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त मशाल से अधिक अच्छी हैं, अतः त्याज्य हैं।

जो मशाल की बात वही उस नंदादीप समई की। पहले मंदिर के गर्भगृह में अँधेरा होता था और समई के अतिरिक्त किसी अन्य दीप की जानकारी नहीं थी। तब समई का नंदादीप ठीक ही था। परंतु अब गोलाबत्ती (बल्ब) के द्वारा गर्भगृह दिन के समान प्रकाशित होने पर भी उन्हें नंदादीप की उपाधि या प्राचीनता प्राप्त नहीं होगी। जो गोलाबत्ती की ओर देखकर स्वयं ही शरमाती हो ऐसी समई जलाएँ तो ही भगवान के सम्मुख दीप जलाने का पुण्य प्राप्त होगा। अधिक प्रकाशना मानो दीप का दीपपन नहीं हैं, किंतु श्रृतिस्मृति काल की मंद जलनेवाली ज्योति जितना ही प्रकाशक सही धार्मिक दीयापन हैं। इसलिए बिजली के दीप को कोई भी 'दीपज्योतिर्नमोस्तुते' कहकर नमस्कार नहीं करता। वह सम्मान तो उस मंद-मंद जलनेवाली सनातन समई को ही मिलना चाहिए।

गत पाँच हजार वर्षों में नरकुल की लेखनी से अधिक अच्छे लेखन के साधन की कल्पना भी हम लिखने के लिए नहीं कर सके। विज्ञान-संस्कृति के अत्याधुनिक प्रवृत्ति के यूरोप ने मुद्रण कला को उठाया, टंक लेखक

(टाइप राइटर), एकटंक (मोनो टाइप), पंक्ति टंकक (लिनोटाइप) एक के बाद एक खोज निकाले। और अब बोलनेवाले की ध्वनि के साथ अपने-आप लेख टंकित करनेवाला स्वयं टंक ही निकल रहा हैं। शिवाजी महाराज के पूर्व से ही पुर्तगीजों ने हिंदुस्थान में छापखाना लगाया था, परंतु हम नरकुल की कलम से लंबे-लंबे कागजों पर कल परसों तक अपनी पोथियाँ लिखते रहे। क्योंकि उस प्रकार के नरकुल से न लिखी हुई को पोथी कैसे कहेंगे? जिल्द लगाई हुई, छपी हुई पुस्तक को धार्मिक होने पर भी रेशम का पीतांबर पहनकर नहीं पढा जाता हैं। पुरानी पोथियाँ ही भाविक, पंत, पंडित और भट भिक्षुकों द्वारा पीतांबर पहनकर पढी जाती हैं।

हम जन्म भी होता है केवल श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त परंपरा में। उत्कृष्ट प्रकाश, वायुशल्यौषधियों से युक्त किसी आधुनिक प्रसूति-गृह में जाना यूरोप में स्त्रियों का कर्तव्य समझा जाता हैं। वही शिष्टाचार। परंतु हमारे यहाँ इसे शिष्टाचार का भंग माना जाता हैं। सभी सुविधाएँ उपलब्ध होने पर भी ऐसे प्रसूति-गृह में प्रसूति हेतू जाना कोई बुरा कृत्य हैं ऐसा स्त्रियाँ ही समझती हैं। परंतु यही संकोच उन्हें श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त अंधकार से भरपूर और गोबर से लिपे हुए कमरे में प्रसूत होने में नहीं लगता। प्रकाश, वायु, शल्यौषधि इनकी आधुनिक सुविधाएँ हैं या नहीं यह देखने की अपेक्षा पंचमी और षष्ठी को देवी-डायन पूजा यथाशास्त्र हो गई या नहीं इसकी चिंता अधिक होती हैं। नाल काटने की कैंची भी देवी के समान पीढे पर रखकर पूजी जाती हैं। डायन कमरें में न आए इसलिए विशेष नरबेला की डालियाँ या पत्तियाँ देहरी पर आडी-तिरछी डालते हैं, भाई-बहन को भी नूतन बालक को स्पर्श करना मना होता हैं। डॉक्टर को भी स्नान करना पडता हैं। बच्चे को पहले दिन से ही सूप में सुलाकर अपने पास रखकर सूप की चावल और सुपाडी रखकर पूजा करनी होती हैं। दस दिन तक इसी प्रकार बालक को सूप में ही सुलाते है। देवी-डायन का चक्कार रात बारह के बाद होता हैं। अतः रात भर जागरण करना, सर्वप्रथम बट्टे को बच्चे के कपडे पहनाकर झूले में सुलाना और बाद में उसके पास बच्चो को सुलाना, शाम को शांतिपाठ करना, झूले को प्रथम धक्का उसकी माँ की पीठ द्वारा देना, इन सभी संस्कारों में अल्प भी अंतर नहीं पडना चाहिए। नहीं तो बच्चा और माँ पर डायन हमला करेगी। परंतु देवी-डायन की इतनी सेवा करनेवाले इस हिंदुस्थान देश में ही बालमृत्यु दर भयंकर हैं। इस देवी को कभी धूप जलाकर सुगंध न देनेवाले, शांतिपाठ कभी न करनेवाले और प्रकाश, वायु की चिंता न करनेवाले उस यूरोप के जच्चे-बच्चे को परेशान करने की देवी के बाप की भी हिम्मत नहीं होती हैं। उन देशों में बालमृत्यु की संख्या लगातार घट रही हैं। लडके उत्तर-दक्षिण धुव्रों पर चढाई करनेवाले और लडकियाँ इंग्लिश चैनल तैरकर पार करनेवाली और अटलांटिक महासागर विमान से पार करनेवाली हैं। विज्ञान की, आधुनिक संस्कृति की पूजा करनेवाले देशों में प्रसूति-गृहों में पैदा हुई ये संतानें देखें और हँसियाँ-कैंची, डायन सबकी पूजा करनेवालों की हमारे श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त प्रसूति-गृह को हमारी संतानें देखें।

जो बात जन्मतिथि को वही मृत्युतिथि की। पक्की, बंद पेटी में प्रेत को ढककर ले जाना अधिक सुविधाजनक होता हैं। परंतु बाँस की कमचियों को गठाने मारकर बनाई गई अरथी उठाना वेदकाल से चलता आ रहा हैं। वह अरथी भार के कारण कभी बीच में भी टूट सकती हैं। पाँच हजार वर्ष पुरानी अरथी पर, विद्रूप मुख खुला रखकर, यह सहन नहीं हो रहा ऐसा मानो उसकी गरदन हिल-हिलकर कह रही हैं। घर में उपले का टुकडा जलाकर एक मिट्टी के मटके में रखकर साथ में ले जाते हैं। खुले मस्तक से रिश्तेदार तथा मित्रमंडली श्मशान भूमि तक उसे ले जा रही हैं। यह प्रेत-यात्रा कितनी भी कष्टदायक हो तो भी पुण्यकार्य हैं। कारण स्पष्ट हैं, क्योंकि वह श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त हैं। भाग्य से हमारे प्रेत को दाह-संस्कार देने की हमारी पद्धति अच्छी हैं। वह अच्छी हैं इसलिए नहीं, अपितु वह सनातन हैं इसलिए अभी तक चल रही हैं, जो हिंदू जातियाँ प्रेत गाडना सनातन समझते हैं वो आज भी गाड रहे हैं। प्रेत जलानेवाले उसे नए विद्युतगृह में जलाने की मान्यता नहीं देंगे। जब बिजली का पता नहीं था, माचिस की खोज नहीं हुई थी तब से चल रही इस अज्ञानी पद्धति से आग जलाकर मटके में ले जाकर, बार बार बुझ रही उस चिता हो बीच बीच में बांस से कुरेदते हुये, श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त पद्धति से ही जलाई जाती हैं। यदि हम किसी भावुक प्रकृति के व्यक्ति को कहेंगे की तेरा प्रेत पेटी में बंद करके ले जाएँगे और विद्युतगृह में जलाएँगे तो बेचारा उस वार्ता से धक्का लगकर जीते-जी ही मर जाएगा। वह व्यक्ति अपने मृत्युपत्र में लिखकर रखेगा की मेरे प्रेत की इस प्रकार दुर्दशा नहीं होनी चाहिए। उसे कसकर अरथी को बाँधकर, लटकता हुवा खुला मुँह पुरे मार्ग में ऐसे हिलता रहता है मानो मृतक मना कर रहा है, श्मशान में लकडी की चिता को बार बार बांस से कुरेदते हुये ही जलाना चाहिए। कारण यह हैं की वही श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त पद्धति हैं और उससे ही सद्गति मिलती हैं। सत्य हैं। क्यों की हजारों वर्ष की इस अज्ञानता को अपरिवर्तनीय शब्दनिष्ठ धर्मग्रंथों ने अमर करके रखा हैं।

इस सामान्य वैयक्तिक प्रकरण के समान रोटीबंदी, समुद्रबंदी, स्पर्शबंदी, शुद्धिबंदी जैसी अपने हिंदू राष्ट्र को अवनति की ओर ले जानेवाली दुष्ट राष्ट्रीय रुढियों को भी ये श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त ग्रंथ आज भी अमर कर रहे हैं। इस कारण राष्ट्र मृत्यु के द्वार पर खडा हैं।

अतएव हिंदू राष्ट्र को इस काल की मार से बचाना हो तो जिन श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त बेडियों ने इसके कर्तृत्व के हाथ-पाँव जकड लिये हैं, उन्हें तोड देना चाहिए। यह भाग्य से हमारी इच्छा पर पूर्ण रूप से निर्भर हैं। कारण, यह मानसिक हैं। यूरोप चार शतकों के पूर्व तक धर्म की अपरिवर्तनीय सत्ता का ऐसा ही दास बना हुआ था। उसके कारण वह हमारी जैसी ही दुर्गति को पहुँचा था। परंतु उसके बाइबिल को दूर हटाकर विज्ञान की वकालत करते ही श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त की बेडियाँ तोडकर आधुनिक बनकर वह आज हमसे चार हजार वर्ष आगे निकल चुका हैं। त्रिखंड में विजयी हुआ हैं। भारत राष्ट्र भी इस प्रकार विजयी होना चाहता हैं तो सनातन ग्रंथ को समाप्त कर और यह प्राचीन श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त शासन लपेटकर, और केवल उन्हें ऐतिहासिक ग्रंथ ही मानकर

संग्रहालय में सम्मानपूर्वक रखकर, विज्ञानयुग का पृष्ठ पलटना चाहिए। इन ग्रंथों का अधिकार कल क्या था यह बताने का ही हैं। और आज क्या उचित हैं यह बताने का अधिकार प्रत्यक्षनिष्ठ, प्रयोगक्षम विज्ञान का हैं। आधुनिकता में गत सभी अनुभवों का उपयुक्त सार सर्वस्व समाया होता हैं परंतु श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त में अद्यावत् ज्ञान का अंश भी नहीं होता। इसलिए अद्यावत यानी अप-टु-डेट बनना ही उचित हैं। आगे चलकर कोई भी बात अच्छी या बुरी, सुधार इष्ट या अनिष्ट, इन प्रश्नों का उत्तर यह आज उपयुक्त हैं या नहीं, इस एक ही प्रत्यक्ष कसौटी पर परख लेनी चाहिए। 'इसे शास्त्राधार क्या हैं ?' यह प्रश्न अब कभी भी पूछना नहीं चाहिए। विद्वानों की परिषद में, शास्त्रार्थ के निरर्थक विवादों में एक क्षण भी व्यतीत नहीं करना चाहिए। कुल मिलाकर आज क्या उपयुक्त हैं, यह देखकर ही फिर उसे करना चाहिए। इस एक वाक्य की चोट के साथ जो प्रश्न हम चार हजार वर्षों से हल नहीं कर पाए वह चार दिन में हल होगा तथा पुरानी बेडियाँ टूट जाएँगी।

आज कौन सी बात राष्ट्रोद्धार के लिए आवश्यक हैं यह बहुधा तुरंत बताई जा सकती हैं। परंतु कौन सी बात शास्त्रसम्मत हैं यह तो ब्रहमदेव भी निर्विवाद रूप से नह बता पाएँगे। हम किसी भी ग्रंथ को अपरिवर्तनीय और त्रिकालाबाधित नहीं मानते। श्रृतिस्मृति आदि सभी पुरातन ग्रंथ हम अत्यंत कृतज्ञता से और ममता से सम्मानित करते हैं। परंतु केवल ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में। उन्हें हम अनुल्लंघ्य ग्रंथ नहीं मानते। हम उसका सारा ज्ञान, अज्ञान आज विज्ञान की कसौटी पर कसेंगे, उसके उपरांत राष्ट्रधारणा तथा उद्धार हेतु जो आवश्यक होगा, उसको बेझिझक व्यवहार में लाएँगे। इस तरह हम भी अद्यावत् या अप-टु-डेट बनेंगे।

इतना निश्चय होते ही अपनी प्रगति की पाँच हजार वर्षों से लगी पिछडी संस्कृति और उसे जकडनेवाली श्रृतिस्मृतिपुराणोक्त की मानसिक बेडी टूटकर हमारे कर्तुत्वशाली हाथ मुक्त हो गए समझो। फिर इन मुक्त हाथों से जो बाहय उपाधि हमारी उन्नति के मार्ग में बाधा बन रही हैं, उनका सिर कुचलकर अपना मार्ग प्रशस्त करना हमें आज के शतगुना अधिक सुलभ हुए बिना नहीं रहेगा।

३. चार वर्णों की चार हजार जातियाँ

ये स्थिति यदि किसी को असहय या अतिशयोक्ति लगती हो तो वह जातिभेद के आज की वस्तुस्थिती को एक बार सोच-समझकर देखे। जिन तत्त्वों और कारणों से अपने हिंदू समाज के टुकडे हुए उनमें से कुछ का उल्लेख परिचय मात्र के लिए कर रहा हूँ। इस परिचय से प्राचीन चार या जादा से जादा पाँच वर्णों के आज हजारों वर्ण और जातियाँ कैसे हुई, यदि पहले का जातिभेद सनातन धर्म होगा तो आज का जातिभेद उस सनातन धर्म का कितना बीभत्स रूप हैं और इसी रूप को उसी सनातन धर्म मानना अपनी ही बात काटना-वदतो व्याघात कैसा होता हैं आदि बाते स्पष्ट होने मे मदत होगी।

हिंदू राष्ट्र के मुख्य चार भाग जिस कल्पना से बनाए गए, उसको यहाँ-

१ **वर्ण-विशिष्ट जातिभेद**- कहें तो इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार (और मानो तो पांचवा अतिशूद्र) वर्ण आते हैं। परंतु इन चार वर्णों के अस्तित्व और व्यवस्था के संबंध में आज कहीं भी एकवाक्यता नहीं हैं। 'कलावाद्यंतयोः स्थितिः' कहकर क्षत्रिय, वैश्य वर्ण अब बिलकुल भी अस्तित्व में नहीं हैं ऐसा कुछ लोग मानते हैं। फिर भी छत्रपति शिवाजी से लेकर सोमवंशीय महार संघ तक अन्य अनेक जातियाँ और व्यक्ति अपना क्षत्रियत्व स्थापित करते हैं। इस मुख्य वर्ण-विशिष्ट भेद में फिर से जिससे उपभेद पैदा हुए वह दूसरा हैं-

२. **प्रांत-विशिष्ट जातिभेद**- ब्राह्मणों में पंजाबी ब्राह्मण, मैथिली ब्राह्मण, देशस्थ, कोकणस्थ, गौड, द्रविड, गोवर्धन। इधर के सारस्वतों की उधर के सारस्वतों से रोटीबंदी, बेटीबंदी, तेलुगु में तमिलों की नंबूदरी से रोटी-बेटीबंदी, वही स्थिति क्षत्रियों की, वैसी ही वैश्यों की, वही शूद्रों की। कोकणस्थ वैश्य अलग, देशस्थ अलग, कोकणस्थ कासार अलग, देशस्थ अलग, यही स्थिती महार, चमार और डोम की भी। इनमें भी पंजाब, बंगाल, मद्रास या अन्य प्रांत की भिन्नता और वहीं रोटी-बेटी बंदी की अभेद्य किलाबंदी फिर-

३. **पंथ-विशिष्ट जातिभेद**- वर्ण एक ब्राह्मण, प्रांत एक जैसे बंगाल, परंतु एक वैष्णव, दूसरा ब्राह्मों, तीसरा शैव तो चौथा शाक्त। वर्ण एक वैश्य, प्रांत एक गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मद्रास या पंजाब, परंतु एक जैन वैश्य, दूसरा वैष्णव वैश्य तो तीसरा लिंगायत वैश्य रोटीबंदी, बेटीबंदी से किलाबंद। बौद्ध, जैन, वैष्णव, सिख, लिंगायत, महानुभाव, मातंगी, राधास्वामी, ब्राह्मों जो-जो पंथ निकले उनमें प्रत्येक की महत्त्वाकांक्षा यह थी की वह जिस समाज का एक अभिन्न अंग था उससे रोटी-बेटीबंदी की दुहत्ती तलवार से साफ काटकर अलग हो जाए और नए पंथ ने यदि कहीं यह कार्य करने में कोई चूक की तो पुराने सनातनी बहिष्कार की तीसरी तलवार चलाकर उस अंग को मुख्य देह से काटकर अलग कर देंगे। परंतु इस तरह वह कटा हुआ अंग और यह कटी हुई देह

दोनों के घायल होने की तथा जीवनशक्ति क्षीणतर होने की अनुभूति किसी को भी नहीं होती। इन वर्ण, प्रांत, पंथ तीन विशिष्ट भेदों से अलग और इन तीनों से अधिक हानिकर एक चौथा-

४. **व्यवसाय-विशिष्ट जातिभेद** का पहाट टूट पडा। इस व्यवसाय विशिष्ट जातिभेद ने तो कहर ढाया हैं। वर्ण के हिसाब से तो कम-से-कम हिंदू राष्ट्र का नौ-दस करोड का शूद्र समूह एक रहना चाहिए था। परंतु अभाग्य को वह सहन न हुआ और उस समूह के व्यवसाय-विशिष्ट, कर्मनिष्ठ जातिभेद ने टुकडे-टुकडे कर डाले। इस एक शूद्र वर्ण की प्रातंवार अलग-अलग जातियाँ हुई ही थीं। पंथ के कारण उसमें पुनः विभाग हुए। ठठेरे, माली, नाई, सोनार, बुनकर, लोहार, बढई, दरजी ऐसे कितने ही और ये जातियाँ केवल दुकानों तक ही नहीं थीं, अपितु जनम-जनम की वंश परंपरा, रोटीबंदी, बेटीबंदी से किलाबंद। ये जातियाँ भी मुख्य व्यवसाय तक ही सीमित नहीं थीं, अपितु एक मुख्य व्यवसाय के उपांग भी उतनी ही रोटीबंद, बेटीबंद अलग अलग जाति। जैसे कटक प्रांत के कुम्हारों की जाति देखें- उनमें कुछ बैठकर चाक चलाते हैं और छोटे मटके बनाते हैं। बस इतने ही अंतर से उनकी दो अलग जातियाँ हो गई और जाति के अर्थ जन्मजात, बेटीबंद, सारे संबंध कटे हुए। कुछ ग्वाले कच्चे दूध से मक्खन निकालते हैं, उनकी अलग जाति हो गई और दूध गरम कर मक्खन निकालनेवाले ग्वालों से उनका बेटी-व्यवहार बंद हो गया। एक मछुआरे की जाति हैं, उनमें जो मछुआरें दाएँ से बाएँ जाल बुनते हैं वे अलग हैं और जो बाएँ से दाएँ जाल बुनते हैं वे अलग हैं, उनमें बेटीबंदी हो गई।

यह पूरा ब्रह्म घोटाला यदि किसी को सचमुच सनातन धर्म का आधार और विकास लगता हो तो उस सनातनी को चाहिए की वह आज निर्मित हो रही नई जातियों को भी लागू कर सनातन धर्म की ध्वजा और ऊँची करे। वह केवल लेखनी से लिखनेवाले बाबुओं की जाति अलग करें, टंक लेखकों की अलग जाति बनाए। जाति माने रोटीबंद, बेटीबंद, किलाबंद। मोटार वाले ब्राह्मणों की एक जाति, रेलगाडीय ब्राह्मणों की दूसरी। नाईयों में भी ऐसी दो जातियाँ वह बनाए-पुराने ढर्रे और छुरे से हजामत बनानेवाली जाति और विलायती उस्तरे तथा मशीन से हजामत बनानेवाले दुसरी। दोनों के बीच रोटीबंद-बेटीबंद।

अंत में यह कहना उचित होगा की पूर्व में हमने कुछ जातियों को जो शुद्र कहा हैं वह पुराने धर्ममार्तडों की परंपरा की भाषा का अनुवाद हैं। उसमें से कुछ अपने को क्षत्रिय मानते हैं और उन्होंने अपने को शुद्ध ब्राह्मण भी कहा तो हमें कोई आपत्ति नहीं हैं, क्योंकि हम गुण के सिवाय केवल बाप की अनुशंसा पर किसी को ब्राह्मण या शूद्र नहीं मानते हैं। और वैसे गुण होंगे तो हम भंगी के बेटे को भी ब्राह्मण मानने को तैयार हैं। कर्म के संबंध में तो हम मानते हैं की सारे ही कर्म समाज-धारण के लिए आवश्यक और सम्माननीय हैं। अपने इस हिंदू राष्ट्र के विराट शरीर के ऐसे शताधिक टुकडे करने के बाद भी चूँकि भेदासूर का समाधान नहीं हुआ, इसलिए उसने उसपर जो तिरछे वार करना प्रारंभ किया, वह पाँचवाँ हैं-

५. **आहार-विशिष्ट जातिभेद** - वर्ण, प्रांत, पंथ, व्यवसाय एक हैं, पर शाकाहारी जो हैं उनकी एक जाति और मांसाहारियों की दूसरी। फिर उस मांसाहारी परिवार में कोई शाकाहार करने भी लगे तब भी उसकी एक बार जो जन्मजात निश्चित हुई वहीं वंश-परंपरा रहेगी। मांसाहारी ब्राह्मण, शाकाहारी ब्राह्मण। मांसाहारी आर्य, शाकाहारी आर्य। मांसाहारी में भी मछली खानेवाले ब्राह्मणों की एक जाति, तो मुरगा खानेवालों की दूसरी और बकरा खानेवालों की तीसरी। इस क्रम में और इसी आधार पर प्याज खानेवाली बहू की एक और आलू खानेवाली सास की दूसरी और लहसुन खानेवाले लडकेकी तीसरी जाति नहीं हुई इतना ही सौभाग्य। महाराष्ट्र में ब्राह्मणों को दिए जानेवाले सीधे पर जिस निष्पाप बुद्धि से ककडी रखी जाती हैं उसी प्रकार बंगाल मे एक मछली। परंतु 'विष्णुना धृतविग्रहः' मछली खाना महापाप समझनेवाले कनौजिया ब्राह्मण इससे क्रोधित होकर उस मत्स्याहारी ब्राह्मण की जाति से रोटीबंदी करके संबंध तोडकर केवल बकरे का मांस, वैदिक धर्म मानकर स्वीकार करता हैं। परंतु इन सब भेदकारक आधारों को भी मात देनेवाला जातिभेद का एक प्रकार अभी शेष हैं और वह हैं-

६. **संकर-विशिष्ट जातिभेद**- प्रकृति के विक्षिप्त भाव से यदि किसी स्त्री के पेट से साँप जन्म ले तो उस संतान से उस स्त्री को भय उत्पन्न होगा, वैसे ही जिन स्मृतियों ने संकर-विशिष्ट जातिभेद को जन्म दिया वे स्मृतियाँ भी अपना डरावना प्रसव देखकर थर-थर काँपने लगीं। मूल चार वर्ण और उनके अनुलोम, प्रतिलोम पद्धति के प्रथम वर्ग के संकरों की गिनती कर उनके लिए नामों की योजना भी स्मृतिकारों ने की। ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरूष के संकर से चांडाल हुआ। फिर चांडाल पुरूष और ब्राह्मण स्त्री से अतिचांडाल हुआ। फिर से अतिचांडाल पुरूष और ब्राह्मण स्त्री का संकर-उनका फिर से संकर, उनका फिर से संकर माने अति-अति-अति-अति चांडाल। पर संकर तो इसके आगे भी हैं । ऐसे अनंत भेद, केवल ब्राह्मण प्रतिलोम के। उतने ही अनंत क्षत्रिय प्रतिलोम के, उतने ही वैश्य प्रतिलोम के, उतने ही शूद्र प्रतिलोम के। उसमें यदि एक अनंत का दूसरे, तीसरे अनंत से हुए प्रतिलोमों को लें और उसमें उतने ही अनुलोमी संकर के अनंत मिला दें तो केवल चार वर्णोंसे उत्पन्न संकरों की संख्या की गिनती अंकगणित की क्षमता के बाहर होगी। उसमें उस वर्ण के बाद में उत्पन्न हुए व्यवसाय आदि उपर्युक्त जातियों के परस्पर संकर जोड दिए तो मनुष्य जातियों की काल्पनिक संख्या अनंत गुना हो जाएगी। ऐसा विचार करते-करते हारकर स्वयं स्मृतिकार ही कहते हैं की संकरोत्पन्न जाति की 'संख्यानास्ति। संख्यानास्ति, संख्यानास्ति, संख्यानास्ति।' सौभाग्य इतना ही की इस सारी व्यवस्था की अनव्यवस्था केवल स्मृतिकारों की कल्पना में ही तैरती रही और वह कभी व्यवहार में नहीं उतरी।

वर्तमान जातिभेद के मूल में स्थितभेद-आधारों में से काफी मान्य, प्रमुख और प्रचलित वर्ण, प्रांत, पंथ, व्यवसाय, आहार, संकर आदि कुछ आधार ही यहाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत किए गए हैं। जातिभेदों में पाप-विशिष्ट जातिभेद, जैसे महापाप करनेवाले बहिष्कृतों की जाति, वंश-विशिष्ट जाति, जैसे यक्ष, रक्ष, पिशाच आदि कई भेद छोड दिए गए हैं।

जातिभेद के वर्तमान स्वरुप की ऐसा भयावह रुपरेखा हैं। हम अपने सारे हिंदू बंधुओं से साग्रह यह निवेदन करते हैं की वर्तमान समय के जातिभेद पहले की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का अति विकृत विध्वंसात्मक रूप हैं। इसलिए हम जो कह रहे हैं, वह क्यों कह रहे हैं, उसे समझने के लिए इस रुपरेखा का कम-के-कम एक बार तो ध्यान से निरीक्षण करें। अपने राष्ट्र-देह के रोटीबंद, बेटीबंद, किलाबंद जैसे हजारों-हजार टुकडे करनेवाला यह जातिभेद, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की मारक विकृति हैं। यह सामाजिक क्षय रोग यूँ ही बढने देना अपनी राष्ट्रीय शक्ति का पोषक हैं क्या? आपको अभी भी यही ठीक लगता हैं क्या? यदि नहीं तो ब्राहम शक्तियों और संकटों ने हमारे पैरों में पहले से ही जो पारतंत्रता की भारी बेडियाँ डाली हुई हैं, उनके साथ ही हमारे अपने द्वारा डाली गई जन्मजात रोटीबंद, बेटीबंद, किलाबंद आदि जातिभेद की बेडियाँ अपनी प्रगति अधिक अवरुद्ध नहीं कर रहीं क्या? अधिक पंगु नहीं बना रहीं क्या? और ये बेडियाँ तत्काल तोडने का काम पूरी तरह अपने हाथ में लेना अपना त्वरित कर्तव्य नहीं हैं क्या? उस बाहरी संकट की बेडियाँ तोडते हुए और तोडने के लिए अगर स्वयं पहनी हुई बेडियाँ, स्वयं अपने गले में बाँधा भारी पत्थर यदि हम तोड-फोड डालें तो अपना हिंदू राष्ट्र, अपनी हिंदू जाति इन आंतरिक लडाई-झगडों और क्षय रोग के शिकंजे से उसी प्रमाण में मुक्त होकर विश्व की अन्य संगठित जातियों और राष्ट्रों की स्पर्धा और संघर्ष में अधिक सक्षम और चढाई करने में अधिक सशक्त होगी।

(केसरी ९.१२.१९३०)

४. जातिसंकर के अस्तित्व का साक्षीदार-स्वयमेव स्मृति

माने हुए और केवल पोथीजनित जातिभेद को परस्पर संकर से शुद्ध रखना ऊपर बताए अनुसार दुष्कर हैं, यह सामान्य रूप से मान्य करके भी हम हिंदू लोग यही कहते हैं, की वह नियम सामान्यतः कितना भी सच हो हमारे चातुर्वर्ण्य के प्रकरण में झूठे ही हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भिन्न जातियाँ परस्पर संकर से एकदम अलिप्त हैं, क्योंकि वै वैसी रहें, इसलिए वैसा ही असाधारण प्रबंध शताब्दियों से किया हुआ हैं। ऐसा कहनेवालों की ऐसी धारणा हैं की एक शुभ पुरातन मुहूर्त पर विराट् पुरूष के मुख से ब्राह्मणों की पूरी जाति अकस्मात् टप से नीचे गिरकर खडी हो गई और छापा डालने के समय पेडों-झुरमुटों में छिपे सैनिक जैसे प्रकट होते हैं वैसे ही विराट् की भुजाओं के रोम-रोम से शस्त्रास्त्र सज्जित क्षत्रिय छलाँगे लगाकर बाहर आए। इस आदिसंभव से लेकर आज तक इन चार वर्णों का रक्तबीज एकदम शुद्ध और संकररहित बने रहने से जैसे ब्राह्मण के लडकों में ब्राह्मण के गुण ही रहते हैं, वैसे ही क्षत्रियों के और शूद्रों में शूद्र के गुण बने हुए हैं।

परंतु जिनकी धारणा सच में ऐसी हैं, उनकी धारणा कितनी गलत और काल्पनिक हैं-यह अपने प्राचीन और सर्वमान्य ग्रंथ, श्रृति, स्मृति, पुराणों का हर पृष्ठ सिद्ध कर सकता हैं। व्यक्तिगत उदाहरण तो विपुल हैं, उन्हें छोडकर केवल दो-चार पुरातन रूढियों और परंपरा प्रचलित प्रथाओं का निर्देश यह सिद्ध करने के लिए काफी हैं की हमारे ये चार वर्ण संकर से कभी भी अलिप्त नहीं थे। उन सुप्रतिष्ठित और शास्त्रोक्त प्रथा के एक-एक नाम में हजारों व्यक्तिगत उदाहरण समाहित हैं।

हमारे चार वर्णों में संकर शास्त्रीय पद्धति से होता आया हैं और हमारी सैकडों जातियाँ तो संकर से ही उत्पन्न हैं।

पितृ सावर्ण्य

विवाह संस्था का जब जन्म ही नहीं हुआ था या उद्दालक ऋषि के संगम-स्वतंत्रता का जो एक काल था, उसे छोड दें। पुराण कथा के अनुसार जब श्वेतकेतु ने विवाह संस्था स्थापित की उसके बाद के काल में भी ब्राह्मण सभी जातियों की स्त्रियों से विवाह करते थे, अर्थात् इसके लिए शास्त्र की अनुमति प्रदान थी ही। इन तीनों वर्णों की स्त्रियों की गोद से उत्पन्न संतति ब्राह्मण ही मानी जाती थी। वचन ही हैं 'त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणो ब्राह्मणात् भवेत्', और ये भिन्न वर्णजात ब्राह्मण संतति ब्राह्मणों की कन्याओं से अभिन्नता से विवाह करते थे। सैकडों वर्ष यह पितृ सावर्ण्य प्रथा शास्त्र सम्मत रूप में हममें विद्यमान थी। सारांश, ब्राह्मणों में तीनों वर्णों का रक्त पीढी-दर-पीढी संचरित होता आ रहा हैं। क्षत्रियों और वैश्यों में भी यही पितृ सावर्ण्य प्रथा थी और इसलिए उनमें भी सब वर्णों का रक्त संचरित हैं। ब्राह्मण की माँ शूद्र, मौसी वैश्य और चाची क्षत्रिय

होना सामान्य बात थी। ममेरा भाई क्षत्रिय तो मौसेरा भाई शूद्र हो सकता था। बेटीबंदी जहाँ इतनी खुली थी वहाँ रोटीबंदी की तो बात ही गौण हैं।

मातृ सावर्ण्य

आगे जब मातृ सावर्ण्य प्रथा चालू हुई और माँ की जाति ही संतान की जाति होने लगी, तब भी 'शूद्रैव भार्य शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते। ते चं स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चायजन्मनः।।' यह नियम बना। यह मिश्र विवाह का प्रयोग था। पितृ सावर्ण्य के कारण ब्राह्मणों में तीनों वर्ण का रक्त संक्रमित हुआ तो मातृ सावर्ण्य के कारण ब्राह्मणों का रक्तबीज तीनों वर्णों में और तीनों से फिर परस्पर में संक्रमित हुए। मातृ सावर्ण्य के कारण एक ही ब्राह्मण का एक पुत्र ब्राह्मण, दूसरा क्षत्रिय, तीसरा वैश्य तो चौथा शूद्र हो सकता था। इस तरह समाज के चारों वर्ण केवल लक्षण से नहीं अपितु रक्तबीज से भाई-भाई थे और उनमें भी गुण-कर्म प्रभाव से एक वर्ण के लोग अन्य वर्णों में समय-समय पर लिये जाने से, जैसे विश्वामित्र ब्राह्मण होकर या सूतपुत्र कर्ण मूर्धाभिषिक्त अंगराज होकर क्षत्रिय हो गए और उन-उन वर्णों में विवाह करने लगे। इसी तरह चारों वर्णों में परस्पर रक्तबीज का जीवन प्रवाह संचरित होता रहता था।

अनुलोम और प्रतिलोम

अनुलोम और प्रतिलोम प्रथाएँ कब अस्तित्व में आई, यह प्रश्न एक तरफ रख दें तो भी उन प्रथाओं के कारण चातुर्वर्ण्य के मध्य हुए संकर से अनेक उपजातियाँ बनीं यह सत्य हैं। और इसीलिए सूत मगध आदि से लेकर शूद्र पुरूष संबंध से ब्राह्मण स्त्री को हुई संतति, जिसे चांडाल माना गया तक, हमारे पूर्वास्पृश्य भाईयों से ब्राह्मण आदि वर्ण का रक्तबीज संकीर्ण हुआ हैं। हमारी सारी जातियों की नस-नस में एक-दूसरे का रक्त प्रवाहित हो रहा हैं, यह तथ्य कोई भी नकार नहीं सकता।

पितृ सावर्ण्य, मातृ सावर्ण्य, अनुलोम और प्रतिलोम इन चार प्रथाओं को श्रृति, स्मृति, पुराणोक्त ऐसी शुद्ध सनातनी मुद्राओं की मान्यता प्राप्त थी। इन प्रथाओं से बिना किसी वाद-विवाद के यह सिद्ध होता हैं की चार वर्णों में ही नहीं, संकर के कारण बनी चार सौ जातियों में निःसंकीर्ण (शुद्ध) अनुवंश कहीं रहा ही नहीं और यह सब शास्त्रीय विवाह और संगम के द्वारा ही हुआ। रक्तबीजों का परस्पर संकर पीढियों से होता आया हैं और इसीलिए अनुवंशिक गुण-विकास के नियम से ही हममें एक-दूसरे के गुण-अवगुण भी संकीर्ण हुए हैं।

एक पांडव कुल ही देखें

उदाहरण के लिए पांडवों के कुल को ही देखें। धर्म संरक्षक आर्योत्तम प्रत्यक्ष सम्राट् भरत का यह कुल कोई हीन या अमंगल कुल नहीं था। और यह वह समय था जब श्रीकृष्ण ने स्वयं 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं' की घोषणा कर

चातुर्वर्ण्य की रक्षा का अभिवचन दिया था। ऐसा नहीं की कोई कहे की मुसलमानों ने सबकुछ बिगाडा हैं या बुद्ध के पाखंड के कारण सब गडबड हुई हैं। वह धर्म-हानि का काल नहीं था। पर उस काल में भी विशुद्ध चातुर्वर्ण्य की रेत की बाँध फोडकर हमारा जीवन प्रवाह बह रहा था।

प्रतीप ने शांतनु से कहा की हे राजा, यह स्त्री कौन हैं, कहाँ की हैं, किस जाति की हैं? ऐसे प्रश्न न पूछते हुए तू उससे विवाह कर ले। इस कथन के बाद अज्ञात जाति की गंगा से शांतनु ने विवाह किया। उसका पुत्र भीष्म अभिषेक से क्षत्रिय हुआ। फिर शांतनु ने, जिसकी जाति-पाँति ज्ञात थी, ऐसी एक मछुआरे की कन्या सत्यवती से विवाह किया और उसे पटरानी बनाया- फिर भी शांतनु की जाति बनी रही। इतना ही नहीं अपितु उस मछुआरे की कन्या के लडके चित्रांगद और विचित्रवीर्य दोनों ही भारतीय ब्राह्मणों के शास्त्रोक्त सम्राट् बने। उसी मछुआरे की कन्या के पुत्र विचित्रवीर्य ने अंबिका और अंबालिका ऐसी दो क्षत्रिय कन्याओं से विवाह किया। परंतु वह निस्संतान ही मर गया, इसलिए उसकी रानियों से नियोग पद्धति से संतान उत्पन्न करने के लिए उनकी सास, उस मछुआरे की कन्या सत्यवती ने श्रीमान व्यास को कहा।

व्यास कौन? ब्राह्मणश्रेष्ठ पाराशरपुत्र और वे ब्राह्मणश्रेष्ठ पाराशर कौन? 'श्वपाकाच्च पराशरः।' एक अस्पृश्य श्वपाक का पुत्र। वह अस्पृश्य श्वपाक का पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ माना गया। उस ब्राह्मणश्रेष्ठ पाराशर को मछुआरे की कुमारी कन्या से जो पुत्र हुआ वह महाज्ञानी, महाभारतकार व्यास था।

अच्छा हुआ! किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय से नहीं, श्वपाक से ब्राह्मणश्रेष्ठ पाराशर मुनि उत्पन्न हुआ। यह भी अच्छा हुआ की किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाति की कुमारी से पाराशर ने संबंध नहीं किया। यदि ऐसा होता तो यह देश व्यास जैसे लोकोत्तर पुरूष से वंचित हो जाता। पर पाराशर से सवाई पुत्र जिसकी गोद में पैदा हुआ वह मछुआरे की कन्या उस महाऋषि पाराशर पर मोहित हो गई, इसलिए बीज क्षेत्र का ऐसा अलौकिक चयन हुआ की उस संबंध से 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वं' ऐसी सार्थ गर्ववाणी जिसकी अलौकिक प्रतिभा के कारण आज हम करते हैं, वह व्यास जैसा भारत कुलवंतस पुत्र उत्पन्न हुआ। कृष्णद्वैपायन व्यास जिसकी श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण कहकर वंदना की और भारतीय सम्राटों के राजमुकुट जिसकी चरणधूलि मस्तक से लगाते रहे, जिस संकर से ऐसा पुत्र पैदा हो, वह संकर वास्तव में शास्त्रीय विवाह हो। जिससे संतति हीनतर हो वह वास्तव में संकर, फिर वह सवर्ण विवाह क्यों न हो! उच्चतर संतति का प्रसव जिससे हो वह असवर्ण विवाह भी हो तो भी वही असली विवाह। ऐसा संकर नारकीय न होकर स्वर्गीय कहना होगा।

महर्षि व्यास ने क्षत्रिय रानियों से नियोग विधि से पांडु और धृतराष्ट्र को जन्म दिया और उनकी शूद्र दासी से विदूर को जन्म दिया। ये तीनों ही उस राजकुल में भाइयों की तरह ही रहते थे। पांडु की अनुज्ञा से उसकी दोनों रानियों कुंती और माद्री ने किन्हीं अज्ञात पाँच पुरूषों से पाँच पांडवों को जन्म दिया। उस कुंती देवी ने कुमारी अवस्था में ही सूतपुत्र कर्ण को जन्म दिया था। उस सूतपुत्र कर्ण को दुर्योधन ने यह कहकर की 'क्षत्रियों का

मुख्य गुण कुल नहीं शौर्य हैं' गुण-कर्मानुसार क्षत्रिय बनाकर अंग देश का राजा बना दिया। भीम ने राक्षस जाति की हिडिंबा से विवाह किया। श्रीकृष्ण ने भी जांबुवंती से और कुब्जा से विवाह किया था। अर्जुन ने नागकन्या से गांधर्व विवाह किया था। परंतु उनमें से कोई जातिच्युत नहीं हुआ।

बस हुआ। इस एक आर्यश्रेष्ठ पांडव-कुल के ग्रथित इतिहास से उस काल के हजारों अग्रथित उदाहरणों का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता हैं और यह स्पष्ट हो जाता हैं की आज यह हिंदू राष्ट्र जिस रोटीबंदी, बेटीबंदी आदि के मजबूत किले में बंद कर दिया गया हैं वैसा वह उस काल में बिलकुल नहीं था। इसे कोई नकार नहीं सकता। बुद्धकाल में तो जाति-संस्था स्पष्ट रुप से तुच्छ हो गई थी। अशोक की माँ ब्राह्मण थी, वैश्य सम्राट् श्री हर्ष की कन्या ने क्षत्रिय से विवाह किया था। यक्ष, तक्षक, नाग आदि कुल भी क्षत्रिय ही मान लिये जाने से क्षत्रियों के उनसे बेटी-व्यवहार होने लगे थे।

जहाँ जाति-वर्ण में शास्त्र मान्य ऐसे रक्तबीज संबंध होते थे, वहाँ जाति-जाति में स्त्री-पुरुषों के यौन आकर्षणवश गुप्त रीति से इससे कितने गुना अधिक होते होंगे? आज जाति-जाति में बेटीबंदी इतनी कट्टरता से लागू हैं तब भी यौन आकर्षण से वर्णसंकर इतनी बडी मात्रा में खुला चल रहा हैं, तो जब बेटीबंदी शास्त्र और व्यवहार में इतनी ढीली थी तब जाति-जाति में रक्त संबंध कितनी बडी मात्रा में होते होंगे, यह अलग से कहने की आवश्यकता नहीं।

अनुवंश की अब तक की गई जाँच का सारांश यह हैं की अनुवंश शुद्ध रखने पर गुण-विकास या गुण-दृढीकरण होता हैं, यह प्राकृतिक नियम अंशतः सच होते हुए भी आज की बेटीबंदी और जातिभेद का समर्थन करते हुए निम्नसीमाएँ ध्यान में रखनी चाहिए-

१. गुण विकास के लिए आवश्यक अनुवंश एकमात्र घटक न होकर अनेक घटकों में से एक घटक हैं।

२. अनुवंश शुद्ध रखने पर भी प्रकाश, अन्न, जल, वायुमान, पितरों की मनःस्थिति, उनके संस्कार, शिक्षा, संधि, साधन आदि परिस्थितीयाँ जैसे-जैसे बदलती हैं वैसे-वैसे संतान के बीजभूत गुण भी भिन्न-भिन्न मात्रा में विकसित या आकुंचित होते हैं।

३. अनुवंश शुद्ध हो तो भी सद्गुणों की तरह ही दुर्गणों का भी वर्धन या दृढीकरण होता हैं। इसीलिए अनुवंश कभी-कभी अत्यंत हानिकर सिद्ध होता हैं और केवल संकर ही वह दोष या दुर्गुण संतानों में से निकाल डालने के लिए समर्थ और हितकारी होता हैं।

४. अनुवंश शुद्ध रखें तो भी पितरों के सद्गुण कुछ काल तक विकसित हो, फिर क्षीण होते जाते हैं, या विकृत होते हैं। ऐसे समय मे संकर प्राणियों हित में होता हैं।

५. निसर्गजनित जातियों में अनुवंश शुद्ध रखना सहज हैं, पर केवल माने हुए- पोथीजनित जातियों में अनुवंश लंबे काल तक शुद्ध रखना असंभव हैं।

६. ब्राह्मण आदि जिन जातियों में आज परस्पर बेटीबंदी कडाई से लागू हैं उन हिंदू जातियों में शास्त्र संमती से पूर्वकाल में अनेकानेक पीढियों सें अन्य-अन्य रक्तबीजों का प्रवाह अखंड बहता था। यौन आकर्षण से होनेवाला गुप्त संकर भी हमेशा ही प्रवाहित होता आया हैं और होता रहेगा। अतः वर्तमान में विवाहों की सीमा में बेटीबंदी कितनी भी कडाई से लागू की जाए, तो भी ब्राह्मण का लडका उपजते ही, ब्राह्मण गुण-संपन्न या क्षत्रिय का क्षत्रिय गुण-संपन्न होगा ही, ऐसा मानना मूलतः त्याज्य सिद्ध होता हैं। हमारी सब जातियों के अनुवंश पीढियों से खुले (संकीर्ण) होने से अनुवंश के नियमानुसार और उस नियम की सीमा में किसी भी जाति को किसी विशिष्ट गुण का एकाधिकार (मोनोपोली) प्राप्त होना असंभव हैं।

प्रत्यक्ष अनुभव

तर्क से अनुमानित उपर्युक्त सिद्धांत को व्यावहारिक अनुभवों का भी अनुमोदन हमेशा मिलता आया हैं। माँ-बापों जैसे ही बच्चे नहीं होते यह अनुभव भी सबको हैं। श्रीकृष्ण का एक भी पुत्र श्रीकृष्ण नहीं निकला। आँखोंवाले व्यास का पुत्र धृतराष्ट्र अंधा था और सात्विक व्यास के पौत्र दुर्योधन, दुःशासन हुए। शुद्धोधन का पुत्र बुद्ध और बुद्ध का पुत्र राहुल। अपनी कन्याओं का बलपूर्वक केवल मुखदर्शन चाहनेवाले म्लेच्छों को रक्तस्नान करानेवाले चितौड के प्रतापी महाराणा और उनके ही वंशज, कन्याओं को कोई बलपूर्वक हरण न कर पाए, इसलिए अपनी कुमारी कन्याओं को विषपान करानेवाले भीमसिंह भी महाराणा। शिवाजी का पुत्र संभाजी और संभाजी का पुत्र शाहू। बाजीराव प्रथम का बेटा राघोबा और पौत्र दूसरा बाजीराव। पृथ्वी के पूरे इतिहास की यह कहानी हैं की किसी शककर्ता के बाद की चौथी-पाँचवी पीढी तक कोई-न-कोई दुर्बल राज्य विनाशक पुत्र उत्पन्न होगा ही, मानो यह कोई सिद्धांत हैं। किसी एक बीज की अंतर्निहित शक्ति किसी एक पुरूष को परम उत्कर्ष देने में व्यय हो जाने पर वह बीज युद्ध में रिक्त हुए तिरकस की तरह खाली हो जाता हैं और अगली पीढियों में उसका तेज संक्रमित नहीं हो पाता।

इसीलिए प्रत्यक्ष गुण देखना उत्तम

माँ-बापों जैसी संतति नहीं होती-यह सार्वजनिक अनुभव हैं। आनुवांशिक गुण-विकास का नियम सत्य होते हुए भी ऐसा क्यों होता हैं? अनुवंश के सारे नियमों की अभी तक जो छनाई (जाँच) हमने की उससे तथा जातिभेद को जितना आवश्यक था उतना विवेचित करने के बाद वर्तमान में प्रचलित जातिभेद की व्यवस्था केवल अनुवंश के सिद्धांत पर करने में हमारी जो भूल हुई या हो रही हैं, उसे सुधारने में उसमें क्या संशोधन किए जाएँ, यह सहज की ज्ञात हो जाएगा। हमारा समाज आज बेटीबंदी का और तज्जन्य शतशः जातियों का समर्थन

इसलिए करता हैं की अनुवंश के कारण जो-जो (जातिगत) गुण जिस-जिस जाति में विकसित होते हैं या दृढ होते हैं, संकर से वे गुण मलिन होने की आपत्ति आती हैं। चातुर्वर्ण्य में बुद्धि, शक्ति आदि विशिष्ट गुणों का विकास हो-इसलिए। यदि ऐसा हैं तो वधू-वर में वे गुण प्रत्यक्ष हैं या नहीं यह विशेषतः देखा जाना चाहिए। वे वधू-वर अमुक जाति के हैं या अमुक कुल के हैं, इतना ही देखकर चलनेवाला नहीं। क्योंकि ऊपर दिए गए छह-सात कारणों से और अनुवंश के गुण, विकास की दृष्टि से एकमात्र घटक न होने से, अमुक जाति या अमुक माँ-बाप हों तो संतान में अमुक गुण होंगे ही, ऐसा निश्चितता से केवल अनुवंश के आधार पर कभी भी नहीं कहा जा सकता। उसमें भी पोथीजनित, केवल मानी हुई, केवल काल्पनिक भिन्नता पर आधारित हमारी वर्तमान की जाति के लिए तो ऐसा मानना केवल अंधी धारणा हैं। इसीलिए वर्तमान की केवल अनुवंश पर अवलंबित बेटीबंदी तोडकर प्रत्यक्ष गुणों पर अवलंबित ऐसी बेटीबंदी को यदि हम मानने लगे तो हमारा जो मुख्य हेतु हैं, सदगुणविकास वह अधिक निश्चियपूर्वक हम प्राप्त कर सकेंगे।

वधू-वर अमुक एक जाति के हों तो उस जाति का जो माना हुआ गुण हैं वह होगा ही, ऐसा नहीं हैं। क्योंकि गुण केवल अनुवंश से उतरते, बढते नहीं और हमारा मुख्य कार्य तो गुणों से हैं, अनुवंश से नहीं। इसलिए जिन वधू-वर में वह इष्ट या अपेक्षित गुण प्रकट हुआ हैं फिर चाहे वह केवल अनुवंश से उतरा हो या परिस्थिति से हो, उन वधू-वर का विवाह करने से ही हमारे जातिभेद के मूल में निहित गुण-विकास का हेतु साध्य होना अधिक संभव हैं। फिर उन वधू-वर की मानी हुई जाति कोई भी क्यों न हो।

विवाह के समय मंगल या शनि उन वधू-वर की कुंडली में किस स्थान पर हैं, आदि बेकार के झगडों की ओर हम जितना ध्यान देते हैं उतना ध्यान वधू-वर की संतान में हम जो अपेक्षा करते हैं वे गुण हैं या नहीं, यह देखने में लगाएँ तो आनुवांशिक गुण-विकास करने में हम आज की अपेक्षा अधिक समर्थ होंगे। बीज से अनुरूप फल लगेगा ही, यह जितने निश्चय से कहा जा सकता हैं उससे सौ गुना अधिक निश्चितता से यह कहा जा सकता हैं की फल लगने पर वह अनुरूप बीज का ही हैं। वैसे ही व्यक्ति में गुण प्रकट हो जाने के बाद उसका अनुवंश या जाति अमुक ही होगी, यह कहना उतने धोखे का नहीं हैं जितना वह व्यक्ति अमुक जाति का हैं, इसलिए उस व्यक्ति में उस जाति का वह माना हुआ या पोथीजनित गुण होगा ही-यह कहना। यदि वह गुण प्रकट हुआ तो उसका अनुवंश परिस्थिति आदि कारण ठीक मिल गए होंगे, यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाता हैं और गुण प्रकट हुआ ही नहीं हैं तो फिर उस अनुवंश को क्या चाटना हैं। गुण प्रकट न हुआ तो उस अनुपात में अनुवंश ठीक भी हो तो परिस्थिति ठीक न होगी। लेकिन उससे क्या लेना-देना?

संतान में गुण-विकास चाहिए तो वह गुण प्रत्यक्ष में जिनमें दृष्टिगोचर हो रहा हैं, उन वधू-वरों का संबंध करना चाहिए। फिर वे गुण उन वधू-वरों में आनुवांशिकता के कारण आए हों या परिस्थिति के कारण। आज के हमारे हिंदू समाज में केवल पोथी में लिखा हुआ भिन्नत्व अन्य किसी भी सहज लक्षण से प्रमाणित नहीं होता, अतः

ब्राह्मण, शूद्र, दरजी, सुनार, बनिया, लिंगायत, ग्वाला, माली आदि हजारों पैदाइशी भिन्न जातियों को मानना पहली भूल हैं और फिर महादेव की जटा से अमुक जाति निकली, ब्रह्मदेव की नाभि से अमुक-ऐसी काल्पनिक उपपत्तियों को अक्षरक्षः सत्य मानकर किसी जाति विशेष में विशिष्ट गुण पैदा होते-ही-होते हैं यह पक्का मान लेना और भी अधिक गलत हैं। वह गुण विशेष उस जाति की संतान में प्रकट न होते हुए भी उसे प्रकट मानना तथा उसी गुणानुरूप मान-पान, सुविधा-असुविधा, उच्चता-नीचता उस जाति की संतान को भोगने देना पर्वतसमान त्रुटि हैं। और कहते है यही है हमारे ऋषियों द्वारा खोजा गया आनुवांशिक गुण-विकास का रहस्य!

कोई कन्या नकटी हैं किंतु उसकी पडनानी की नाक चंपाकली जैसी थी, इसलिए हम उसे भी सुंदर नाकवाली तो नहीं कहते। तो उस आनुवांशिक गुण-विकास के उस सनातन रहस्य की रत्ती भर भी परवाह न करते हुए उसके प्रत्यक्ष दिखती नकटी नाक को देखकर उसे नकटी ही कहते हैं। वैसी ही किसी लडके की आँख जन्मतः ही अंधी हो तो उसके किसी पूर्वज की आँखे कमल जैसी थीं, इसलिए उस लडके को कमललोचन न मानते हुए उसे अंधा ही कहते हैं। फिर वही न्याय पोथी में लिखे चातुर्वर्ण्य के गुणों के लिए क्यों न लागू हो। ब्राह्मण वंश में कोई गधा निकला तो उसे गधा ही कहना होगा और शूद्रों में ज्ञानी निकला तो उसे ज्ञानी ही कहना चाहिए-फिर चाहे उसका पिता, दादा या पडदादा गधा हो या ज्ञानी हो। अनुवंश सही उतरा हो तो गुण प्रकट होगा ही, पर गुण प्रकट न हुआ तो अनुवंश परिस्थिति या किसी अन्य गुण के विकास घटक में कुछ त्रुटि हुई हैं, ऐसा मानना होगा।

कोई कहता हैं, व्यक्ति के गुण हमेशा बच्चे में उतरते ही हैं, ऐसा नहीं हैं। वे तीसरी-चौथी पीढी में भी प्रादुर्भूत होते हैं। हाँ, होते हैं। पर कभी-कभी, और कभी-कभी तो होते ही नहीं। वे जब प्रकट होंगे तब उसे मानेंगे ही। पर किसी गवैया की मधुर आवाज उसके प्रपौत्र में सनई जैसी मधुर निकलेगी ऐसी पक्की गारंटी दी भी गई हो तो उसपर विश्वास कर उसके पुत्र और पौत्र को संगीत शिक्षक के पद पर नियुक्त कर उसके गर्दभ स्वर की प्रशंसा कर 'फिर से' 'फिर से' (once more) कह सकेंगे क्या? एक वीर पुरूष पैदा हुआ, हमने उसे अपना सेनापति बनाया। उसका पुत्र डरपोक निकला, घोडे को देखते ही वह डरता हैं। पर सेनापति का वीरत्व उसके पौत्र में फिरसे प्रकट होगा, इस आशा से उस डरपोक पुत्र को वांशिक सेनापति पद देकर घोडे पर बाँधकर क्या पानीपत की लडाई में भेजा जाए? तीसरी-चौथी पीढी में पितृगुण उतरते हैं, संत तुकाराम की आज १०-२० पीढियाँ हो चुकीं, पर उस वंश में एक भी तुकाराम पैदा नहीं हुआ। या अनुवंश के गुणों की दया कर पांडुरंग ने संत तुकाराम के किसी वंशज के लिए फिर से आज तक स्वर्गीय विमान नहीं भेजा। गत सात पिढियों में रामदास के घर रामदास नहीं हैं और न बोनापार्ट के कुल में बोनापार्ट पैदा हुआ।

विश्व के अन्य राष्ट्रों के अनुभव देखें

पोथीजनित माने हुए जातिभेद के गडबडझाले पर कभी न सोचते हुए गुणविकास के विज्ञान का अवलंबन कर जो समाज आज विश्व में जी रहे हैं, उनमें से अधिकतर में ही हर पीढी कुल मिलाकर पहले से अधिक ऊँची, विशाल, सुंदर, सुबुद्ध, वीर और परोपकार-निरत पैदा हो रही हैं, जैसे अमेरिका। हर पीढी में उनके पुरूष 'दीघौरस्को वृषस्कन्धो शालप्रांशुर्महाभुजः' ऐसे पौरूषीय लक्षणों से अधिकाधिक संपन्न होते जा रहे हैं। उनकी महिलाएँ सुंदरता में, सृजन क्षमता में, सुभगता में और अपत्य संगोपन में भी अधिकाधिक क्षमतावान हो रही हैं। और हमारे यहाँ की हर पीढी पहले की अपेक्षा अधिक दुर्बल, दुर्मन और दुर्धन पैदा हो रही हैं। हमारे विचार से इसके कारण कई हैं, जातिभेद ही अकेला कारण नहीं हैं।

परंतु जातिभेद के कारण ही आनुवांशिक गुणविकास सही में हो रहा होता तो वस्तुस्थिती उलटी होती। क्योंकि वे अमेरिकन पोथीजनित जातिभेद हवा में खडे भी नही होते और हम तो मानो उसी में जी रहे हैं। कोई कहेगा, यह तो ऐसा ही होगा। **अरे! ये कलियुग हैं!**

ये कलियुग हैं, इसमें आदमी दुर्बल होंगे। गायें सूखी रहेंगी, खेती कमजोर रहेगी, बरसात कभी-कभी ही होगी; हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों ने यह सब पहले ही कह रखा हैं। हम उनसे एक प्रतिप्रश्न करना चाहते हैं। कलियुग तो पूरे विश्व पर आएगा, इसके प्रभाव में पूरी मनुष्यजाति आएगी। फिर अमेरिका में इसके ठीक उलटी स्थिती क्यों हैं? उनके आदमियों की सीना, ऊँचाई, प्रतिभा हर पीढी में बढती ही जा रही हैं। उनकी एक गाय हमारी दस गायों के बराबर दूध देती हैं। नारियल जितने बडे आलू, बिना बीज के अंगूर और विश्व के हर भूखंड को देकर भी शेष रहे इतना अनाज और आदमी। चाहे जहाँ और चाहे जितना पानी बरसाने की कला उसके अधीन हैं।

हाँ, यदि उन त्रिकालज्ञ ऋषियों ने कलियुग का बाँझ भविष्य केवल भारत के लिए ही व्यक्त किया हो तो निश्चित ही वे त्रिकालज्ञ थे, क्योंकि जिन अनेक कारणों से हमारी यह दुर्दशा हुई हैं, उसमें प्रत्यक्ष अनुभव होते हुये भी सुजननशास्त्र के नियमों को लतियाकर, अंधे अनुमान पर खडे किए गए जातिभेद का टीका गत अनगिनत पीढियों से लगवा लेना यह एक महत्त्व का कारण हैं।

उसी टीके के कारण हमारे यहाँ चींटियों जैसे नन्हे, सडे, कीडा लगे आदमी संतान रूप में उत्पन्न होंगे,यह उन ऋषियों कोभी ज्ञात होगा। ऐसा ही हो तो उन्होंने जो भविष्यवाणी की, सत्य ही थी।

५. मुसलमानों के पंथ-उपपंथों का तुलनात्मक धर्मविज्ञान दृष्टि से परिचय

हिंदू धर्म में घुसे हुए जन्मजात जातिभेद, अस्पृश्यता आदि रूढियों की तरफ अंगुली दिखाकर मुसलमान प्रचारक भोलेभाले हिंदुओं को कहते रहते हैं की तुम मुसलमान बनों। हम में जातिभेद, पंथभेद नहीं हैं। हमारा धर्मग्रंथ एक, पैगंबर एक, पंथ एक, हमारे धर्म में सारे मुसलमान एक समान, कोई ऊँच-नीच नहीं। मुसलिम मौलवियों का यह वाग्जाल कितना तथ्यहीन हैं, यह दिखाने के लिए हम मुसलिम धर्मपंथ की सत्य जानकारी देनेवाले एक-दो लेख लिख रहे हैं।

किसी एक धर्म का पक्षपात या पक्षघात करने की अन्यायी एवं अहितकारी दुर्बुद्धि न रखते हुए केवल सत्य (जो हैं उसका यथावत् ज्ञान) ही सब धर्मों के अध्ययन की न्यायिक एवं हितकारी कसौटी हैं-यह मानकर जिसे सब धर्मों का स्वतंत्र अध्ययन करना हो, उसे जो पहला सूत्र सीखना चाहिए, या जिस शर्त का पालन करना चाहिए, वह यह हैं की मनुष्यजाति में अज्ञान युग के हाटेटांट अंदमानी द्वीपों के धर्ममत से लेकर अत्युच्च वेदांत विचार तक, जो भी धर्ममत प्रचारित हुए या हो रहे हैं, वे सारे अखिल मानवजाति की सामूहिक संपत्ति हैं, उस विशिष्ट परिस्थिति में मनुष्य के हितार्थ सूझी हुई, ऐहिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिए रचित वह योजना होने से वे प्रयास अखिल मानवजाति के कृतज्ञ आदर के पात्र हैं। ऐसी ममत्व एवं समत्व की सादर भावना से ही उन सब धर्ममतों का अध्ययन करें, उनके धर्मग्रंथों को पढे, उन सारे धर्मग्रंथों का सम्मान करें।

हर उस धर्ममत में जो भी चिरंतन सत्य हैं उसको स्वीकर करने में हम सबका हित हैं। जो कुछ उस परिस्थिति में सत्य लगा या उस संघ को उस काल सीमा में हितकारक था, परंतु आज जो विज्ञान की शोध ज्योति के झकाझक प्रकाश में निश्चित सत्याभास हैं की आज की परिस्थिति में वह मनुष्य-हित में बाधक हैं उसका त्याग करने में ही हम सबका हित हैं। उस सबको त्यागना सत्य के शोधकर्ता का और मनुष्य के उद्धार के लिए प्रयासरत रहने के इच्छुक प्रामाणिक साधक का कर्तव्य हैं, धर्म-कर्तव्य हैं।

कारण कुछ भी हो, परंतु जो ऐहिक एवं पारलौकिक धारण करता हैं, वह धर्म हैं 'धारणात् धर्मनित्याहुः।' धर्म की यह व्याख्या इतनी सुसंगत और बुद्धिनिष्ठ हैं की उसे नकारने का साहस धर्म-उन्मादियों को भी सहसा न होगा।

अर्थात् किसी भी धर्ममत में या धर्मग्रंथ में यह ऐसा हैं इसलिए वह सत्य एवं कृत्य होगा ही, ऐसा किसी अध्ययनकर्ता की बुद्धि को पहले कदम पर ही पंगु बना देनेवाली किसी प्रतिज्ञा से धर्माधर्म का तुलनात्मक अध्ययन करने का इच्छुक विज्ञानवादी स्वयं को बाँधकर नहीं रखेगा। वेद के अध्ययन के प्रारंभ में ही यदि वेद

ईश्वरकृत हैं और इसलिए इसका हर अक्षर सत्य ही होगा, उसके किसी भी अक्षर को असत्य कहनेवाला नरक में जाएगा, ऐसी प्रतिज्ञा स्वीकार करने पर अवेस्ता, तौलिद, बाइबिल, कुरान आदि अन्य धर्मग्रंथों का पक्षपातरहित दृष्टि से अध्ययन करना संभव न होगा। वैसे ही कुरान ईश्वरकृत हैं, इसलिए उसका हर अक्षर सत्य। यदि सहज झूठ ही कहा जाए की तू मरने पर नरक में नहीं जाएगा, यहीं-के-यहीं तुम्हें मार डालना चाहिए तो ऐसी प्रतिज्ञा करना तर्क न होकर लाठी मार ही होगा। जो ऐसा मानेगा, उसे कुरान के बाद अन्य धर्मग्रंथों का अध्ययन करना संभव नहीं होगा। उन्हें तो अधर्मग्रंथ के रूप में पढा जा सका तो पढा जा सकेगा।

परंतु विकृत पूर्वग्रह स्वीकार करने से साफ इन्कार करनेवाला विज्ञानवादी वेद, अवेस्ता, कुरान आदि ग्रंथ को पक्षपातरहित दृष्टि से और उस ग्रंथ में प्रवृत्ति-निवृत्ति पर हुए लेखन ने उस काल में जो मनुष्यजाति की सापेक्ष उन्नति की होगी, उसे परखकर एक सीमा तक कृतज्ञता से अध्ययन करने को मुक्त रहेगा। ॲरिस्टॉटल, प्लेटो, चाणक्य, ह्यूम, हस्कले, हेगेल, मार्क्स आदि के धर्म दीवानेपन की कक्षा में न समानेवाले जागतिक ग्रंथों को उसमें निहित भिन्न मतवाद से या आज कच्चे लगनेवाले भौतिक विधेयों से विषाद न करते हुए जैसे ममत्व बुद्धि से, समतोल बुद्धिवाद की कसौटी पर परखते हुए, निर्भयता से उसे मानवजाति को संयुक्त संपत्ति मानते हुए, उनका सम्मान करते हुए हम सब पढते हैं, वैसे ही यदि हम सब वेद, अवेस्ता, बाइबिल, कुरान आदि सारे धर्मग्रंथों को उसी वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से पढे तो उनके तुलनात्मक अध्ययन से हर उस ग्रंथ के सैद्धांतिक सत्य एवं उपयुक्त आचार स्वीकार करने के लिए अधिक खुलेपन से तैयार हो जाएँगे और उन ग्रंथों के नाम पर धर्म के पागलपन में जो कत्लेआम एवं रक्तपात एवं उनके होने की आशंका भी नहीं रहेगी। विज्ञान ग्रंथों को पढते हुए जैसे विद्युत् या रेडियम के उत्पत्ति-सूत्र में मतैक्य न हत हुए भी रक्तपात होने की आशंका जन्म नहीं लेती।

मिल्टन, होमर, वाल्मिकि, ओमर आदि के काव्य, कांट, स्पेंसर, कपिल, स्विनोसा आदि के तत्त्वज्ञान के ग्रंथ, इतिहास ग्रंथ, विद्युत् प्रकाश, ऊर्जा आदि के वैज्ञानिक ग्रंथ, यंत्रविद्या, वैद्यक, शिल्प, उपन्यास आदि के लाखों ग्रंथ विश्व में कहीं भी लिखे गए हों, उन सभी को संयुक्त विश्व की साझा संपत्ति मानकर ममत्व और समत्व से, शांति से पढा जाता हैं। ऐसा नहीं होता की ग्रंथालय में पढते-पढते एकाएक जोश में आकर आपस में भिड जाएँ। वैसे ही ये दस-पाँच धर्मग्रंथ हम क्यों नहीं पढ सकते? इन दस-पाँच पुस्तकों के कारण पिछली दस-पाँच सदियों में सिवाय रक्तपात, उत्पात और विध्वंस के कुछ नहीं हुआ। आदमी-आदमी का बैरी हो गया। ऐसा तो किसी अधर्म ग्रंथ के कारण होना था, धर्मग्रंथ से तो नहीं।

बुद्धिवाद के विरुद्ध आक्षेप

किसी भी विषय के ग्रंथों को अपने तकर्शुद्ध बुद्धिवाद से जैसे हम परखते हैं वैसे ही उपर्युक्त सारे धर्मग्रंथों को ममत्व और समत्व से सादर पढकर विज्ञान की अद्यतन कसौटी पर उन्हें परखें और जो उत्तम हैं उसे मानव की सामूहिक संपत्ति मानकर हम सब स्वीकर करें।

हमारी उपर्युक्त सूचना पर एक निश्चित आक्षेप जो किया जाता हैं और जो शब्दनिष्ठ प्रवृत्ति का होता हैं, वह यह की पुरूषबुद्धि अधिकतर हर व्यक्ति की भिन्न होती हैं, वह अस्थिर और परिवर्तनशील भी होती हैं, इसलिए मनुष्य को ऐसा कोई ठोस आधार नहीं मिलता। पुरूषबुद्धि स्खलनशील परंतु ईश्वरीय आज्ञा अस्खलनशील, त्रिकाल बाधित होती हैं, इसलिए किसी एक ईश्वरोक्त ग्रंथ को प्रमाण न मानने पर मानव की जीवननौका बिना पतवार बिना गंतव्यबोध के भटकने लगती हैं। अच्छे-बुरे के बारे में पक्का निर्णय, अभिमान तोड सके ऐसा अंतिम प्रमाण मिलना कठिन हो जाता हैं।

ऐसा कोई निश्चित प्रमाण ईश्वर ने सचमुच ही दिया होता तो कितना अच्छा होता परंतु...

वेद अवेस्ता, कुरान, बाइबिल ये सब ईश्वरप्रणीत ग्रंथ हैं ऐसा मानें तो भी उपर्युक्त आक्षेप की आपत्ति नहीं टलती। यह मुख्य बाधा हैं, क्योंकि ईश्वर निर्मित अपौरूषेय, ईशप्रेषित ऐसे जो पचास-पचहत्तर ग्रंथ भिन्न-भिन्न मनुष्य समुदाय ने स्वीकृत किए हुए हैं वे एक दुसरेके विरूद्ध विधानों से भरे हुए हैं। इन सारे ग्रंथों में से हर ग्रंथ बिना विवाद जो एक बात कहता हैं वह यह की वह एकमात्र ग्रंथ ईशप्रेषित परम प्रमाण हैं और शेष सारे पाखंड हैं।

उपर्युक्त में से वेद, कुरान किसी को भी ईश्वरोक्त समझ लें तो भी बात बनती नहीं हैं, क्योंकि यही एक ईश्वरोक्त हैं और अन्य मनुष्यकृत, यह कौन निश्चित करेगा? पुरूषबुद्धि! परंतु जिस किसी तर्क से वे अन्य ईश्वरोक्त नहीं हैं ऐसा निश्चित करें तो उन तर्कों से एक भी ग्रंथ ईश्वरोक्त नहीं हैं- यही सिद्ध होता हैं।

तर्क पद्धित को तिलांजलि देकर केवल लाठी से भैंस हाँकने के न्याय से कोई एक ग्रंथ मनुष्य समाज पर लादा जाए और कहा जाए की यही ईश्वररोक्त, स्वयं प्रमाण हैं और शेष सारे ग्रंथ झूठ हैं- ऐसा लाठी फरमान हो तब भी पुरूषबुद्धि फिर से अपनी हरकतें शुरू करने और स्वयं प्रमाण ग्रंथ को स्वयं के हाथ की गुडियाँ बनाने का काम छोडेगा नहीं। क्योंकि एक ग्रंथ के अर्थ तो अनेक होते हैं। इस आपत्ति से मुक्ति नहीं मिलती। इससे मुक्ति का एक ही उपाय था और वह यह की स्वयं ईश्वर एक ही ग्रंथ ईश्वरोक्त कहकर सब जगह भेजता और उसी के साथ उस ग्रंथ के हर अक्षर का एक ही अर्थ मानव को सूझना अनिवार्य कर डालता, दूसरा अर्थ सूझे ही नहीं, ऐसी पुरूषबुद्धि कर डालता। तब केवल एक ही ग्रंथ ईश्वरोक्त रहता और हमेशा रहता। पर वैसी कोई व्यवस्था ईश्वर ने की नहीं। इसलिए एक ही ग्रंथ को अहं प्रमाण, स्वयं प्रमाण, ईश्वरोक्त प्रमाण के रूप में मानें तो भी उसका भाष्य करने का काम चूँकि उस पुरूषबुद्धि को ही करना पडता हैं जो बहुत भिन्न, अस्थिर,

अप्रतिष्ठ होती हैं, इसलिए एक ही ग्रंथ में अनेकता, अस्थिरता, विविधता आती हैं और ग्रंथ की अप्रतिष्ठा हो जाती हैं।

उदाहरणार्थ पहले वेद को लें। वेद अपौरूषेय हैं पर 'प्रमाणं परमं श्रृतिः' माननेवाले करोडों धर्मजिज्ञासु हिंदुओं के लिए वेद एक धर्मकेंद्र होते हुए भी उसके हर मंत्र और हर शब्द के अर्थ भिन्नता से अनेक वेद हो जाते हैं। पुरूषबुद्धि के सिवाय उसका अर्थ लगाने का दूसरा साधन मनुष्य के लिए उपलब्ध न होने से जितने पुरूष उतने वेद, उतने पंथ, उतने ही भिन्न प्रमाण होते हैं। एक कहता हैं वेद में पशु यज्ञ हैं, दूसरा कहता हैं नहीं ऐसा नहीं हैं। तीसरा तीसरे ही विकल्प की बात करता हैं। एक मानता है की मांशासन, जन्मजात अस्पृश्यता, मूर्तिपूजा, केशवपन, वेदांत आदि वेद में हैं; उसी वेद के उसी मंत्र के आधार पर दूसरा कहता है, नही! ईश्वर एक हैं यह वेद के आधार पर एक पक्ष उच्च स्वर से कहता हैं तो मीमांसा आदि पंथ भिन्न पुरूष के पार या देवता के पार ईश्वर हैं ही नहीं, ऐसा कहते हैं। कोई वेद का आधार लेकर संन्यासियों की निंदा कता हैं तो 'यदहरेव विरजेत। तदहरेव प्रव्रजेत। वनाद् वा गृहाद्वा।।' ऐसा वेद के आधार पर ही अन्य पंथ मानते हैं। एक मजे की बात यह की यह सारी एक-दूसरे से भिन्न बातें कोई ऐरा-गैरा नहीं कह रहा, ये तो यास्क, कपिल, जैमिनी, शंकर, रामानुज से लेकर दयानंद तक बडे-बडे आचार्य कहते हैं। वे सब स्थितप्रज्ञ, योगी, सिद्ध, साक्षात्कारी थे। कौन सच, कौन झूठ, कैसे चुने? चुने बिना कैसे रहें? और चुनाव तो पुरूषबुद्धि से ही होगा। अंतिम बात यह की यद्यपि वेद ग्रंथ अक्षर रूप में एक हैं फिर भी अर्थ रूप में जितने टीकाभाष्य और अर्थकार उतने शताधिक वेद हो जाते हैं।

सारांश, पुरुषबुद्धि को टालने के लिए एक ग्रंथ को परम प्रमाण ही नहीं अपितु ईश्वरोक्त प्रमाण मान लेने पर भी मनुष्य को ऐहिक और पारलौकिक पथ-प्रदर्शक पुरूषबुद्धि के सिवाय दूसरा कोई भी मिलना संभव नहीं हैं।

अंतर इतना ही हैं की पुरूषबुद्धि से जो तर्क प्रतिष्ठ लगेगा वही लेंगे, ऐसा स्पष्ट कहने के बाद ही अन्य ग्रंथों की तरह वेद, कुरान, बाइबिल आदि ग्रंथ भी पढे और अनुसरण किए तो मतभेद होने पर वहा गाली-गलौज, लाठी-डंडा चलने तक की आशंका नहीं होगी। वैज्ञानिक ग्रंथ पढते वक्त परिस्थिति के अनुसार उसका सामना करने या पैंतरा बदलने के लिए आदमी स्वतंत्र रहता हैं, पर ईश्वरोक्त वेद का 'मैं कहुं वही अर्थ ईश्वरोक्त हैं' ऐसा कहने और ऐसा ही मानते हुए वेदपठन और उसपर आचार करने का दुराग्रह रखा तो 'मेरा जो विचार वही ईश्वर का विचार' ऐसा खुराफती अहंकार पालनेवाला व्यक्ति धार्मिकता के नशे में झूमने लगता हैं और वेद का अर्थ करने का ठेका मेरा, तेरा नहीं, ऐसा चिल्लाते हुए मनुष्य मनुष्य का भयानक शत्रु हो जाता हैं और विचार व्यक्त करने का स्थान व्यक्ति को ही नामशेष करने में हो जाता हैं। मेरा विचार मेरी मानवीय बुद्धि के अनुसार यह भावना मन में रहे तो व्यक्ति धार्मिकता में पगला न जाए जितना की वह यह मानने पर हो जाता हैं की

मेरा कहा ईश्वर का कहा हैं। इश भाव से तो वह उन्मादी हो जाता हैं। सर्वसामान्य व्यक्ति पर लागू होनेवाला यह सत्य नकारा नहीं जा सकता।

परंतु जिन्हें ऐतिहासिक और बुद्धिनिष्ठ दृष्टि से इन धर्मग्रंथों का अध्ययन करना होता हैं, उन्हें भी उन मंत्र उद्‌गाता ऋषियों या ईसा, मूसा, मोहम्मद आदि बडे-छोटे शताधिक पैगंबरों द्‌वारा प्रेषितों के, संतों और साधुओं के अंतःस्फूर्त संदेश ईश्वर ने स्वयं ही कहे हैं ऐसा पूर्ण निश्चय था, उन महान् पैगंबर, साधु, संत, ऋषि, महर्षि आदि से व्यक्तिनिष्ठ चर्चा करने का कोई कारण नहीं हैं। उन महान् विभूतियों की वह निष्ठा सच्ची थी, उन्हें वे स्वयं ही ईश्वर के अवतार या ईश्वर के प्रेषित पैगाम लानेवाले हैं ऐसा जो लगता था वह उनके लिए एक सत्य ही था, ढोंग नहीं था ऐसा मानते हुए भी हम विज्ञाननिष्ठ अध्ययनकर्ताओं को वे धर्मग्रंथ, शब्द-शब्द की निष्ठा से न पढकर जैसेकि कोई मनुष्यकृत ग्रंथ पढा जाता हैं वैसे ही तर्क की कसौटी के आधार पर पढने की स्वतंत्रता का उपभोग करने का अधिकार हैं ऐसा कह सकते हैं।

इस बुद्धि की स्वतंत्रता का उपभोग चाहते हैं, इन ग्रंथों का पुरुषबुद्धि से ही अध्ययन करना संभव हैं ऐसा हम स्पष्ट कहते हैं। परंतु ग्रंथों को ईश्वरप्रेषित या अपौरुषेय माननेवाले लोग उनका भाष्य करते समय अवशता से, न कहते हुए पर समझते-बूझते अंतः पुरुषबुद्धि की ही शरण जाते हैं। बस केवल इतना ही अंतर हैं!

ग्रंथ को मनुष्यकृत मानकर पुरुषबुद्धि के साफ चश्मे से पढना या ग्रंथ को ईश्वर रचित मानकर उसका अर्थ उसी पुरूषबुद्धि के मैले चश्मे से पढना परिणाम की दृष्टि से एक ही बात हैं। शब्द से वेद चाहे एक ही हो, पर अर्थ के भाव से जितने आचार्य, जितने भाष्यकार, जितने स्मृतिकार या जितने वाचक उतने वेद हो जाते हैं। यह तो हुई वेदों की बात, पर यह बात अकेले वेद की नहीं हैं। मनुष्यजाति में जो-जो ग्रंथ ईश्वरीय माने गए हैं, या माने जाएँगे उन सबकी यही गति होगी। तकर्तः वह अपरिहार्य हैं, वस्तृतः वैसा ही घटित भी हुआ हैं।

इसके दूसरे उदाहरण के रूप में इस लेख में प्रख्यात ग्रंथ पवित्र कुरान (कुरानशरीफ) का इसी संदर्भ में इतिहास देखें। वेद में से शताधिक पंथ बने, उन सबने वेद के अपने-अपने भिन्न अर्थ माने और इस तरह प्रत्यक्ष में शताधिक वेद ग्रंथ बने, यह सारी कहानी अपने घर की ही होने के कारण काफी कुछ परिचय की हैं। पवित्र बाइबिल, जिसका वेद जैसा ही अपौरूषेय, ईश्वरप्रेषित मानकर सम्मान किया गया, वह ग्रंथ भी शब्दशः एक ही ग्रंथ हैं तब भी अर्थभाव से उसके सैकडों बाइबिल कैसे बने यह भी, यूरोप के इतिहास का जिन्हें काफी परिचय हैं ऐसे शिक्षित वर्ग को, काफी कुछ ज्ञात हैं। परंतु हमारे निन्यानबे प्रतिशत हिंदुओं को और हिंदुस्थान के लाखों मुसलमानों को यह निश्चित ज्ञात नहीं की ईश्वरोक्त कहने के कारण सम्मानित मनुष्य जाति के एक और प्रख्यात और सुप्रतिष्ठित ग्रंथ की, कुरानशरीफ की भी, वही गत बनी हुई हैं। कुरानशरीफ शब्दशः एक ही ग्रंथ हैं, फिर भी भिन्न-भिन्न संप्रदाय उसके हर वाक्य और मतितार्थ का भिन्न ही नहीं अपितु अन्योन्य विरोधी अर्थ अपनी पुरूषबुद्धि की अपरिहार्य दृष्टि से करते आए हैं और इसीलिए अर्थभाव से एक कुरान के शताधिक

कुरान बने हैं। उन भिन्नार्थवादी पंथ-उपपंथों में से किसके द्वारा लगाया जानेवाला भावार्थ सत्य हैं, यह प्रश्न हमारे सामने नहीं हैं। उनमें से कुछ प्रमुख पंथों ने कुरान के एक ही विधेय के कितने विभिन्न अर्थ किए हैं! यह वास्तविकता हैं और जो वास्तविकता हैं उसे स्थालीपुलक न्याय के अनुसार दिखाना ही इस लेख का उद्देश्य हैं।

इसी संदर्भ में जानकारी देने के लिए प्रथम श्रेणी के प्रमाणित ग्रंथकारों का ही आधार लिया गया हैं। अंग्रेजी में कुरान का अनुवाद करनेवाले जॉर्ज सेल, कुरान के मराठी अनुवादक, यूरोप को मान्य होगा ऐसी नई दृष्टि से कुरान का अर्थ देते हुए अंग्रेजी में उसका अनुवाद करनेवाले इंग्लैंड के प्रख्यात इस्लाम प्रचारक डॉ. मोहम्मद साहेब, इस्लाम संस्कृति के प्रगाढ अध्ययनकर्ता जस्टिस अमीर अली आदि नामवर इस्लाम धर्म, इतिहास एवं संस्कृति आदि के लेखक वर्ग के ग्रंथों का हमने जो काफी वर्षों से अध्ययन किया, उसी आधार पर निम्न जानकारी का, हर शब्द का सावधानी से सहारा लिया हैं। जो चाहे वह उस जानकारी की जाँच कर सके इसीलिए लिये गए आधार का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। यथावत् जानकारी देते हुए मेरा स्वयं का मत-प्रदर्शित कोष्ठक में (   ) दिया जाएगा।

पवित्र कुरान की संक्षिप्त रुपरेखा

कुरान शब्द का अर्थ-पढने योग्य पाठ्य या संकलन होता हैं। समय-समय पर ईश्वर की ओर से मोहम्मद साहब को जो संदेश प्राप्त हुए वे अलग अलग संदेश जिसमें इकट्ठा किए गए वह संचय, संग्रह, संकलन माने कुरान। पैगंबर का अर्थ होता हैं- पैगाम (संदेश) लानेवाला, ईश्वरीय संदेश लानेवाला, ईशप्रेषित। कुरान के एक सौ चौदह अध्याय हैं- अध्याय को सूरा कहा जाता हैं। हर अध्याय के श्लोक को आयत कहा जाता हैं। कुरान की मूल सात अलग-अलग प्रतियाँ ज्ञात थीं। दो मदिना पंथी, तीसरी मक्का पंथी, चौथी कूफा में प्रचलित, पाँचवी जिसे ब्रासा में सम्मान प्राप्त हैं, छठवी सीरिया की और सातवीं सर्वसाधारण में प्रचलित। इन प्रतियों की श्लोक संख्या भी अलग-अलग हैं। एक में छह हजार श्लोक हैं, तो दूसरी में छह हजार दो सौ छत्तीस।

यहूदी लोगों की तरह ही मुसलमानों ने पवित्र कुरान के शब्द सत्रह हजार छह सौ उनतालीस और अक्षर तीन लाख तेईस हजार पंद्रह गिने हैं। इतना ही नहीं, अपितु हर अक्षर कुरान में कितनी बार आया हैं उसकी भी गिनती की गई हैं, अर्थात् इन संख्याओं को विवादास्पद माननेवाले आचार्य भी हैं।

कुरान के कुछ अध्यायों के प्रारंभ में जिनका कोई रूढ अर्थ नहीं हैं ऐसे दो-चार अक्षर होते हैं। उस प्रयोग का क्या हेतु हैं यह जानने, यहूदी लोगों के धर्मग्रंथों की तरह ही मुसलमान धर्मशास्त्री मतभेद के भँवर में फँसे हुए हैं। कुछ कहते हैं, इन अक्षरों का अर्थ तो केवल ईश्वर को ही ज्ञात हैं या फिर मोहम्मद पैगंबर को ज्ञात होगा। अन्य इस बात को न मानते हुए यथामति उसका अर्थ करते हैं। हर व्यक्ति अपने द्वारा किए गए अर्थ को ही

सच्चा ईश्वरीय अर्थ मानता हैं। जैसे कुछ अध्यायों के प्रारंभ में अ, ल, म ये तीन अक्षर आते हैं। कुछ आचार्य कहते हैं इनका अर्थ मनुष्य को करना ही नहीं चाहिए। उसका अर्थ ईश्वर या पैगंबर ही जाने। दूसरा पंथ कहता हैं, नहीं उसका अर्थ किया जाना चाहिए और वह अर्थ भी यही होगा की अल्लाह, लतीफ, मजीद इन तीन शब्दों के पहले वर्ण हैं और उनका अर्थ हैं- ईश्वर दयालु और गौरवशाली हैं। तीसरे कहते हैं उन तीन वर्णों से 'अनालमीनि' यह वाक्य बनता हैं और उसका अर्थ हैं- मुझे और मुझसे (सब पूर्ण और शुभ जन्म लेता हैं)। चौथा कहता हैं वह वाक्य अना-अल्ला-आलम हैं और उसका अर्थ हैं- सर्वत्र जो ईश्वर हैं वह मैं ही हूँ। पाँचवा कहता हैं वे आद्याक्षर हैं ही नहीं। कुरान की कर्ता शक्ति, प्रकट शक्ति एवं प्रचार शक्ति ऐसे तीन अल्लाह-जिब्रील- मोहम्मद का वह संकेत हैं और पहले का पहला अक्षर, दूसरे का अंतिम अक्षर और तीसरे का अंतिम से पहला उसी क्रम से लें तो अ, ल, म बनता हैं। छठा कहता हैं अ मूल स्वर हैं, ल तालव्य हैं और म औष्ठ्य हैं और इससे सूचित होता हैं की ईश्वर सारे जग और कर्म का आदि, मध्य और अंत हैं और इसलिए उसका स्मरण नित्य आदि, मध्य, अंत में करना चाहिए। सातवाँ पंथ कहता हैं की ये वर्ण संख्यावाचक हैं, जिनका योग ७१ हैं और वह यह निर्देशित करता हैं की इतने वर्ष में इस्लाम धर्म सारे विश्व में प्रस्थापित हो जाएगा।

(ईश्वरीय धर्मग्रंथ अक्षर-अक्षर एक होते हुए भी पुरुषबुद्धि उसके कितने विविध अर्थ करती हैं, इसका यह कितना सुंदर उदाहरण हैं-तीन अक्षर तीस अर्थ।)

कुरान के अध्ययों के नाम एवं मंगलारंभ वाक्य के संबंध में कुछ धर्मशास्त्रियों का मत हैं की वे कुरान के अध्ययों की ही तरह ईश्वरोक्त हैं तो कुछ धर्मशास्त्री मुसलमानों के मत में वे मनुष्यकृत हैं, ईश्वरोक्त नहीं।

मुसलमानी शास्त्रीय मत परंपरा के अनुसार कुरान की रचना मोहम्मद साहब या किसी मनुष्य ने नहीं की हैं, वह अनादि हैं। इतना ही नहीं, वह ईश्वरकृत भी नहीं हैं, वह तो ईश्वरमय ही हैं। उसकी पहली प्रतिलिपि जो लिखी गई वह ईश्वर के सिंहासन के पास की एक बडी मेज पर रखी हुई हैं। संपूर्ण भूत-भविष्य का लेखन भी उसी मेंज पर अति उच्च स्वर्ग में लिखा रखा हैं। उस ईश्वरीय मेज पर रखी कुरान की एक प्रतिलिपि देवदूत जिब्रील के हाथों से सबसे नीचे के स्वर्ग में भेजी गई। वह रमजान माह के जिस रात को भेजी गई, उसी रात का नाम शक्तिमती था। उस कागजी प्रतिलिपि का वह कुरान देवदूत जिब्रील द्वारा मोहम्मद साहेब को क्रमशः प्रकट किया गया। कुछ मक्का में, कुछ मदीना में, जैसा-जैसा अवसर आता गया वैसा-वैसा वह लिखित भाग जिब्रील की ओर से पैंगंबर की चेतना में डाला गया। परंतु वह पूरी-की-पूरी दिव्य पुस्तक देखने का भाग्य भी मोहम्मद पैगंबर को जिब्रील की कृपा से वर्ष में एक बार मिलता था। रेशमी वस्त्र में बँधी सोने की कलाबत्तू से कढी, स्वर्गीय हीरे-जवाहरात में मढी वह दिव्य पुस्तक थी।

यद्यपि उपर्युक्त मत के अनुसार कुरान अनिर्मित एवं अनादि हैं और प्रत्यक्ष कुरान में वैसा न माननेवाले को पाखंडी कहा गया हैं, फिर भी हर महत्त्व के धर्म प्रश्नों की तरह इस प्रकरण में भी मुसलमान धर्मशास्त्रियों में

तीव्र मतभेद जो होना था हुा। मोटाझलाईट और मोझदार के अनुयायियों का प्रबल इस्लामी ग्रंथ उपर्युक्त मत के पूरी तरह विरुद्ध हैं और उनके मत में कुरान को अनादि, ईश्वरमय एवं अनिर्मित मानना बहुत बडा पाप हैं, पाखंड हैं। इस संदर्भ के कुरान वाक्यों का वे उपर्युक्त से बिलकुल उलटा अर्थ निकालते हैं। यह मतभेद इतना बढा की अलमामून खलीफा के राज्य में, कुरान अनादि न होकर निर्मित हैं, ऐसी धर्माज्ञा जारी हुई और जो कुरान को अनादि, अनिर्मित मानेगा, उसे कोडे लगाने, कारागृह में बंद करने का, यहा तक की मृत्युदंड भी दिया गया। अंत में खलीफा अलमोतावक्केले ने दोनों ही पक्षों को अपने-अपने मत पर चलने की स्वतंत्रता दी।

कुरान जिस भाषा में लिखा हैं वह अरबी भाषा शैली अरबिस्तान में इतनी श्रेष्ठ मानी जाती हैं की उसी भाषा शैली के आधार पर ऐसा सिद्ध करने का वे प्रयास करते हैं की वह पुस्तक मनुष्यकृत न होकर ईश्वरकृत होगी। जो प्रतिपक्षी मोहम्मद पैगंबर को ढोंगी कहते हैं, उनका हम आव्हान करते हैं की वे इतनी सुंदर अरबी लिखकर दिखाएँ, ऐसी काव्यमय रचना करके दिखाएँ। परंतु चूँकि कोई भी ऐसी उत्तम अरबी लिख नहीं सकता, इसलिए कुरान ईश्वरोक्त ही होगा। कुरान मनुष्यकृत न होकर ईश्वरीय हैं- इसका दृढ साक्ष्य यही हैं की उसकी भाषा-शैली अतुलनीय हैं।

(परंतु इस तर्क से तो इतना ही सिद्ध होता हैं की मोहम्मद पैगंबर उत्कृष्ट कवि थे। मुसलमानों के मोटाझलाईट, मोझदार, नोदम आदि धर्मशास्त्रीय पंथ भी उपर्युक्त तर्क का उपहास करते हुए खुले-खुले कहते हैं की कुरान से भी उत्कृष्ट अरबी भाषा-शैली मनुष्य लिख सकता हैं। अगर इस तर्क से उत्कृष्ट अरब भाषाशैली के आधार पर कुरान ईश्वरीय हैं तो उत्कृष्ट संस्कृत भाषा शैली या उत्कृष्ट मराठी, बँगला, तमिल, जर्मन, ब्राहमी में लिखे ग्रंथों को भी ईश्वरीय मानना पडेगा।)

कुरान कैसे प्रगट हुआ? मोहम्मद पैगंबर जब चालीस वर्ष के आस-पास के थे तब एक गुफा में ईश्वर का ध्यान करने बैठते थे। वहाँ देवदूत जिब्रील मनुष्य रूप में आया और उसने कहा तेरा जो मालिक हैं, उसका लिखा यह देख। मोहम्मद ने कहा, पर मुझे ते अक्षर न पढने आते हैं, न लिखने। तब मोहम्मद पैगंबर को अंतःप्रेरणा से ईश्वरीय संदेश आने लगे। वे जैसे आते थे मोहम्मह उसका वैसे ही उच्चारण करते थे। उनके शिष्य उनको स्मरण रखते, कुछ लिख लेते। ऐसा बीस वर्ष होता रहा और पैंसठ वर्ष की आयु में जब मोहम्मद पैगंबर स्वर्गवासी हुए तब तक जो संदेश समय-समय पर मिले थे, वे उस समय अरबिस्तान में कागज बहुत प्रचलित न होने से चमडे और खजूर के पत्तों पर लिखे गए। बाद में जो इधर-उधर थे उन्हें एक जगह संगृहित किया गया। जो मौखिक थे वे सारे एकत्रित कर मोहम्मद के खास शिष्य और उत्तराधिकारी अबूबकर ने कुछ व्यवस्था से एक ग्रंथ में लिखे, वही कुरान हैं। मोहम्मद के पहले शिष्य अधिकतर लडाइयों में मारे जाने से जब यह कुरान संगृहित किया गया, तब कुछ संदेश छूट गए। स्थल-काल का अनुक्रम नहीं रहा। इस ग्रंथ में

मोहम्मद पैगंबर के कई वाक्य, जो अन्यों को स्मरण थे, न आने से वे उसे अपूर्ण कहने लगे। इस संबंध में सभी मुसलमान धर्मशास्त्री एकमत हैं।

(इसका अर्थ यह हैं की अपने वेद की जो स्थित हैं की उसमें कितनी ही श्रृतियाँ लुप्त हैं, व्यास ने जो मूल श्रृतियों का संकलन किया, वही आज का अनुक्रम हैं, उससे अधिक पुराना नहीं, ऋषि देवता आदि विषयों का सुसंगत एकीकरण नहीं हैं, वही स्थिति अर्वाचीन होते हुए भी इस कुरान की हुई हैं। कितने ही ईश्वरीय संदेश छूट गए हैं, अतः उसे ईश्वरीय प्रमाण ग्रंथ माना तो उसमें उल्लिखित आज्ञाएँ ही केवल ईश्वरीय धर्म हैं, ऐसा समझना गलत हैं। क्योंकि जो संगृहित हैं उनसे भिन्न और कोई ईश्वरीय आज्ञाएँ थीं ही नहीं,ऐसा नहीं कहा जा सकता।)

अबूबकर द्वारा किया गया यह संकलन (कुरान) मोहम्मद पैगंबर की अनेक पत्नियों में से एक विधवा स्त्री हप्सा, जो खलीफा उमर की कन्या थी, कौ सौंपा गया। परंतु पैगंबर की मृत्यु के बाद तीस वर्षों में ही उपर्युक्त दिए नाना कारणों से कुरान की एक से दूसरी न मिलनेवाली अनेक आवृत्तियाँ मुसलमानी साम्राज्य के अलग-अलग भागों में चलने लगी। हर कोई अपने ही कुरान को सत्य मानकर दूसरे कुरान के पाठ भेद को पाखंड, धर्मबाह्य कहने लगा। अबूबकर के कुरान को उसके प्रतिस्पर्धी वह अबूबकर की स्वयं की कृति हैं, ऐसा कहते और ईश्वरीय होने का उसका अधिकार नकारते। यह सारा घोटाला ठीक करने के लिए खलीफा (उस्मान) आश्मन ने अलग-अलग प्रचलित कुरान की जितनी संभव हो सकीं उतनी प्रतियाँ एकत्रित कर और हप्सा के पास की अबूबकरकी प्रति को ही मान्य करते हुए उसमें जो कुछ हैं उसे ही मानने का आदेश जारी किया। अबूबकर के कुरान की हजारों प्रतियाँ तैयार करवाकर दूर-दूर तक बाँटी गई तथा उससे अलग या कम-अधिक आयतोंवाली प्रतियाँ जप्त कीं और जला दीं गई।

इतने प्रयास के बाद आज का कुरान ईश्वरीय और सच्चा माना गया।

परंतु आज भी बहुत पाठभेद इस्लामी धर्मशास्त्रियों के मतानुसार अस्तित्व में हैं।

इतने से भी काम न हुआ। परस्पर विरोध टालने के लिए भिन्न-भिन्न प्रतियाँ जलाकर एक ही कुरान रहने दिया तब भी उसमें ऊपर वर्णित कुछ पाठभेद हैं ही। पर उससे भी अधिक कठिनाई और आश्चर्य की बात यह की उस ईश्वरीय मानी गई अनन्य प्रति में मोहम्मद पैगंबर के ही अनेक परस्पर विरुद्ध वचन अनिवार्य रुप से आए हुए हैं। पैगंबर स्वयं ईश्वर का एक आदेश एक दिन कहते थे और दूसरे दिन पहले दिन के आदेश का एकदम उलटा आदेश लिखवाते थे। शिष्य हर शब्द को लिख लेते थे, पूरी ईमानदारी से। पर उनकी समझ में नहीं आता की बिलकुल परस्पर विरोधी आदेश ईश्वर कैसे दे देता था। सर्वज्ञ ईश्वर को भी अपने विचार मनुष्य की तरह भिन्न भिन्न परिस्थिति में बदलने पडे। मोहम्मद साहेब का प्रतिपक्षी और अनुयायी भी इससे बहुत

आश्चर्य और संदेह में पड गए। प्रतिपक्ष तो खुला आरोप लगाने लगा की इससे यह साफ हो जाता हैं की भूत-भविष्य-वर्तमान जाननेवाले सर्वज्ञ ईश्वर की यह रचना न होकर इसपर तो मनुष्यकृति होने की स्पष्ट छाप हैं।

किसी एक परिस्थिति में मोहम्मद की सत्ता और हित को जो अनुकूल लगा वह ईश्वर का आदेश हैं, ऐसा कहा गया। दूसरी परिस्थिती में जब वह नियम सत्ता पर छाए विभिन्न संकट के कारण अहितकारी लगने लगा तो मोहम्मद पैगंबर ने उलटा नियम कहकर उसे ईश्वर की अंतिम से अंतिम आज्ञा के रूप में प्रचारित किया। सर्वज्ञ ईश्वर यदि उस कुरान को लिखता तो पहले ही अपना गलत आदेश न देता या यह कहता की कुछ समय बाद अमुक परिस्थिति आते ही मैं विपरीत आदेश देनेवाला हूँ। तब तक इस पहली की पालन किया जाए। ऐसा होता तो परस्पर विरुद्ध आदेश प्रसारित न होते। उससे ईश्वरीय कृति अधिक सजती। पर ऐसा न कर पहला आदेश त्रिकाल बाधित धर्म के रूप में कहा गया और बाद में मैंने गलती की, अब जो दूसरा आदेश कह रहा हूँ वो पहले के उलट होते हुए भी त्रिकाल बाधित सत्य हैं, ऐसा कहा जाना कुरान के रचियता ईश्वर को मानव की तरह क्षणभंगुर बुद्धि का मानने की अपेक्षा, सारे कुरान को ही मनुष्यकृत मानना ईश्वर के सच्चे भक्तों को अधिक सरल था। मोहम्मद पैगंबर भी अपनी जीवित अवस्था में अपने प्रतिपक्ष का विरोध टाल न सके। प्रतिपक्ष के आरोपों का उत्तर वे इतना ही देते की मैं क्या करूँ? ईश्वर ने जैसा समझा वैसा आदेश दिया, उसको कौन रोकेगा? कौन उसका मुँह पकडेगा? वह चाहे जैसा आदेश देगा। ईश्वर सत्य ही सर्वशक्तिमान और स्वतंत्र हैं। (अति शब्दनिष्ठ मुसलमान धर्मशास्त्री भी इन परस्पर विरुद्ध कुरान-वचनों का स्पष्टीकरण उपर्युक्त उत्तर से अधिक सुसंगत रीति से नहीं कर सकते।)

स्वयं पैगंबर के मुँह से निकले परस्पर विरुद्ध आदेश, जिनका उल्लेख ऊपर आया हैं, वे वैसे ही परस्पर विरुद्ध हैं, इस संबंध में अधिकतर इस्लामी आचार्यों के साथ ही स्वयं पैगंबर का भी यही मत हैं। पंरतु ऐसे केवल दो-तीन अपवाद नहीं हैं। इस्लामी धर्मशास्त्री ऐसे अपवादों की संख्या दो सौ तीस मानते हैं। जैसे मोहम्मद पैगंबर के मुँह से ईश्वर ने सभी मुसलमानों को यह आदेश दिया की तुम सब मुसलमान जेरूसलेम (ज्यू लोगों का काशी तीर्थ) की और मुँह कर प्रार्थना करोगे। यह भी नहीं कहा की यह आदेश अल्पकालिक हैं। अन्य सारे फरमानों की तरह यह फरमान भी त्रिकाल बाधित हैं, सर्वज्ञ सर्वथा अनुल्लंघनीय धर्माज्ञा की तरह उसी ढंग और भाषा में प्रथम दिया हुआ हैं। पर उसके अनेक वर्षों बाद ईश्वर ने दूसरा आदेश पहले के बिलकुल विपरीत किया की जेरूसलेम की और मुँह करके प्रार्थना न करते हुए मेरे सच्चे भक्त मक्का की और मुँह करके प्रार्थना करेंगे। (कुरान को ईश्वरीय कृति मानने पर यह विरोध विसंगत लगात हैं। वही कुरान मनुष्यकृत मानने पर इन दो प्रार्थनाओं में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं लगता। क्योंकि पहले मक्का में प्राचीन अरबी धर्म के मूर्तिपूजक लोग प्रबल थे, उन्होंने मोहम्मद साहेब का उच्चाटन कर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर कर दिया था। उनके विरोधी जब तक मक्का पर काबिज थे तब तक मोहम्मद साहेब के उन शत्रुओं का केंद्र मक्का था, इसलिए

मक्का की और मुँह करके प्रार्थना करना मोहम्मद साहेब को पसंद न था। पर बाद में उन्होंने मक्का पर अपना अधिकार जमा लिया। मक्का चूँकि उनकी मूलभूमि, जन्मभूमि, तीर्थभूमि थी इसलिए उसपर कब्जा होते ही वह उनके इस्लामिक धर्म की राजधानी और पवित्र क्षेत्र हो गया। इसलिए फिर संपूर्ण मुसलमानी समाज ने अपने धर्म राष्ट्र को एकसूत्री, एकमुखी, एकजीवी करने के लिए जो एकरूप बंधन लादे उनमें यह बंधन भी था की हर मुसलमान मक्का की ओर मुँह करके ही नमाज (प्रार्थना) अदा करेगा।)

इस्लाम धर्म का जो संविधान ग्रंथ हैं उसमें ही इतने संदेह पैदा करनेवाली न्यूनताएँ हैं तो उसे अविकल, अशंकनीय, अनन्य ईश्वरीय ग्रंथ कैसे मानें, यह उनके एकनिष्ठ अनुयायियों के लिए भी एक समस्या बन जाने से उन्हें उन न्यूनताओं को भरने के लिए अंत में पुरुषबुद्धि की सहायता कैसे लेनी पडी और चूँकि पुरूषबुद्धि श्रृतिर्विभिन्नता स्मृतयश्चभिन्ना होती हैं, अतः मूल कुरान कौन सा हैं, कौन से श्लोक सच्चे हैं, कौन सी प्रतिलिपि पूर्ण हैं, किस पाठभेद का कौन सा अर्थ ग्राह्य हैं, इन सारे प्रश्नों का भिन्न निर्णय देनेवाले आचार्यों की जितनी संख्या, उतने कुरान हो गए हैं।

और जो स्थिति कुरान के मूलपाठ या विधान की हैं वही उसके हर वाक्य के अर्थ की बन गई हैं। एक ही वाक्य या विधेय के इसलामिक पंथ, उपपंथ के आचार्यों ने कैसे भिन्न-भिन्न अर्थ प्रस्तुत किए-वह बोधप्रद और धर्मशास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त हैं। मैं यह जानकारी इस लेख के उत्तरार्ध में दे रहा हूँ।

उत्तरार्ध

पवित्र कुरान की जिन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख मैंने पूर्वार्ध में किया था और जो सामान्य हिंदू और मुसलमान को भी स्मरण रहनी चाहिए, उनका सार संक्षेप निम्नवत् हैं-

१. मोहम्मद पैगंबर को ईश्वर ने जो संदेश भेजे, जैसा उन्हें लगता था, वे सारे-के-सारे तत्काल लिखे नहीं जाने से उनमें से कुछ खो गए। पैगंबर की मृत्यु के बाद अबूबकर द्वारा किया गया उनका संकलन अपूर्ण हैं।

२. उस अपूर्ण कुरान में अनेक ईश्वरीय आज्ञाएँ परस्पर विरोधी हैं। एक आदेश को कहने के बाद ईश्वर ने उसे रद्द किया और दूसरा आदेश जारी किया। ऐसे कोई डेढ-दो सौ प्रकरण हैं। इससे उस अपूर्ण कुरान में जो आदेश हैं, उन्हें भी रद्द करने का आदेश उन खोए हुए और छूटे हुए भाग में होने की बहुत संभावना हैं। इसलिए जो उपलब्ध हैं वह कुरान भी कुछ-एक पंथों के मुसलमान आचार्यों के विचार से विश्वास करने योग्य नहीं हैं।

३. इसी कारण अबूबकर के कुरान से अलग सात-आठ कुरान ग्रंथ और प्रचलित हैं।

४. इन सात-आठ कुरानों में से अमुक एक कुरान सच्चा हैं, यह ईश्वर ने प्रत्यक्ष साक्ष्य से कहीं नहीं कहा। हाँ, उस्मान खलीफा ने अपनी दंडशक्ति से या लाठी के जोर से, उनकी पुरूषबुद्धि को उचित लगी इसलिए अबूबकर के कुरान पर सच्ची होने की मोहर लगाई और शेष को जलाकर या जप्त कर नष्ट कर दिया। सुन्नी पंथियों ने उसको स्वीकार किया।

५. पर इतना होने के बाद भी जिन्हें सुन्नी पंथ के सिद्धांत मान्य नहीं थे, उन शिया पंथियों की बडी-बडी मुसलमानी जमातों ने उस निर्णय को मान्यता नहीं दी। सुन्नी पंथियों का वर्तमान कुरान घटा-बढाकर बना अविश्वसनीय ग्रंथ हैं, ऐसा शिया पंथ के आचार्य खुल्लमखुल्ला कहते हैं, पर सच्चा कुरान ग्रंथ हमारे पास हैं- ऐसा जो शिया पंथ के लोग कहते हैं, उसको सुन्नी पंथ के मुसलमान झूठा ग्रंथ कहते हैं। सारांश यह की पूर्ण ईश्वर प्रदत्त या ईश्वरोक्त लगनेवाले कुरान ग्रंथ का कोई अस्तित्व ही नहीं हैं।

६. सुन्नी पंथ का जो ग्रंथ आज कुरान के रूप में सुन्नियों में आदरणीय हैं, उसमें भी अनेक पाठभेद हैं, यह बात अनेक मुसलमानी धर्मशास्त्री निर्विवाद रूप से मानते हैं।

सारांश यह की यद्यपि धर्मग्रंथ का एक ही नाम कुरान हैं, फिर भी उस नाम का ईश्वरदत्त ग्रंथ कौन सा हैं, यह मानव बुद्धि से ही निश्चित करना पडता हैं। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रतियों को भिन्न-भिन्न आचार्य सच्चा मानते हैं। इस तरह अनेक कुरान हो गए। शब्दशः देखें तो कुरान में शब्दशः एकवाक्यता नहीं हैं।
और अर्थशः देखें तो घोटाला शतगुना बढा हुआ हैं। क्योंकि शब्दशः जो विचार एक पंथ मानता हैं, उसी में

अर्थशः अनेक भाव निर्मित होते हैं और उसके सैकडों अर्थ होते हैं तथा एक-एक अर्थ को प्रधानता देनेवाले अलग उपपंथ बनते हैं। उनमें से कुछ प्रमुख उपपंथ निम्न हैं-

१. हानिफाई (सुन्नी)- इस उपपंथ का नाम उसके आचार्य हानिफा के नाम पर पडा हैं। मोहम्मद पैगंबर की स्मृति को यह पंथ अमान्य नहीं करता, फिर भी उसका शब्दशः पालन नहीं करता।

२. शफाई सुन्नी- यह आचार्य शफाई या अनुयायी पंथ हैं। मुसलमानी श्रृति (कुरान) और स्मृति (पैगंबर से संबंधित आख्यायिका एवं उनके स्वयं के वचन) इन दो की कक्षा में मानव बुद्धि को कोई स्वतंत्रता नहीं हैं। हर शब्द परम प्रमाण हैं, ऐसा इनका मत हैं। आचार्य शफी अमुक एक बात सच या झूठ हैं, यह कहते हुए कभी भी ईश्वर की सौगंध नहीं लेते थे।

३. मालेकी सुन्नी- इस पंथ के आचार्य का नाम मालेक हैं। जिन प्रश्नों पर कुरान और पैगंबर की आख्यायिकाओं में कोई स्पष्ट अभिप्राय नहीं हैं उन सारे प्रश्नों पर मालेक मौन रहता था, इतना वह और उसका पंथ शब्दनिष्ठ प्रवृत्ति का था। मृत्युशय्या पर पडा वह रो रहा था, उससे रोने का कारण उसके ही अनुयायियों ने पूछा तो आचार्य मालेक ने कहा, कुरान के वचनों के बाहर मैंने स्वयं की बुद्धि से कुछ निर्णय तो नहीं किए? यह चिंता ही मुझे रूला रही हैं। यदि मैंने कभी शास्त्र के आदेश के बाहर जाकर बरताव किया हो या निर्णय दिया हो तो वैसे हर मेरे मनगढंत शब्द के लिए ईश्वर कोडे से मेरी उतनी बार धुनाई करे।

४. हानबाली सुन्नी- पैगंबर के वचन एवं आख्यायिकाओं का यह पंथ अत्यंत अभिमानी हैं। इसके आचार्य हानबाल को पैगंबर की दस लाख आख्यायिकाएँ मुखोद्‌गत हैं- ऐसी उनके अनुयायियों में उसकी प्रसिद्धि थी। कुरान केवल अपौरूषैय नहीं, वह तो अनादि, अनिर्मित एवं स्वयंसिद्ध हैं और उसकी उत्पत्ति ईश्वर ने भी नहीं की। वह ईश्वरमय ही हैं, ऐसा आचार्य हानबाल का कहना था। कुरान को ईश्वरमय ही समझना धर्मबाह्य पाखंड हैं ऐसा विचार मोटासम खलीफा का था और उसने खलीफा होने के कारण हानबाल को वैसा पाखंड फैलाने से रोका था, परंतु हानबाल मानता नहीं था। तब खलीफा ने उसे बंदी बनाकर रक्त-रंजित होने तक उसकी कोडे से पिटाई करवाई। हानबाल पंथ कट्टर और कर्मठ माना जाता हैं। एक बार इस पंथ के अनुयायियों ने बगदाद की राजधानी में उत्पात किया और जो मुसलमान कुरान के आदेशों के पालन में कर्मठ नहीं थे उनके घरोंमें घुसकर उनके मदिरा भरे पात्र लुढका दिए, मदिरापान के पात्र फोड डाले। कुरान के आदेश न मानकर नाच-गाने करते-करवाते हैं, इसलिए नर्तकियों-गायिकाओं को भारी मार लगाई। वाद्‌य चकनाचूर कर दिए। इस्लाम धर्म के लिए इस पंथ के अति कर्मठ, कट्टर भाव जिन्हें मान्य नहीं थे उन्हे इस पंथ के विरुद्ध कडे उपाय कर कठोर दंड देकर चुप कराना पडा। उपर्युक्त ग्रंथ, उनके विचार और उनकी कट्टरता न माननेवाले मुसलमानों को, पाखंडी, पापी समझते हैं और उन्हें शाप देते हैं की वे सारे नरक में जाएँगे और जब संभव होता हैं, तब उन्हें दंडित करने से नहीं चूकते।

उपर्युक्त चारों सुन्नी पंथों में कुरान और आख्यायिका के प्रमाण मानने संबंधी जो ऊपरी एकवाक्यता हैं, वह भी निम्नवर्णित पंथों में आवश्यक नहीं मानी जाती और तत्त्वतः वे सब स्वतंत्र हैं। ऐसे सुन्नी वर्ग में न आनेवाले कुछ प्रमुख पंथ भी हैं।

५. मोटाझली- इस पंथ का प्रवर्तक वासेल हैं। वासेल के अनुसार ईश्वर एक हैं तो उसे विशेषणों की अनेकता से दरशाना भी पाप हैं। ईश्वर हैं, अस्ति सत् इसके आगे उसे चित् आदि अन्य गुण दरशानेवाले विशेषण नहीं लगाने चाहिए। उसका अखंड स्वरुप इस कारण खंडित होता हैं। चित् आदि भिन्न गुणधर्म एक ही अनंत, अखंड, एकरस पदार्थ के कैसे माने जा सकते हैं। ऐसा करने से एक से अधिक असीम पदार्थ मानने का दोष लग जाता हैं। एकेश्वरी धर्म के यह विरुद्ध हैं। उसका दूसरा महत्त्व का मत यह हैं की नियतिवाद झूठा हैं। अच्छा जो कुछ हैं उसका कर्ता ईश्वर हैं, जो अच्छा नहीं हैं उसका वह कर्ता नहीं हैं। तीसरा उसका मत यह हैं की अच्छा या बुरा कहने का इच्छा स्वातंत्र्य मनुष्य को हैं। उस आचार्य के मतानुसार प्रलय के अंतिम दिन पूरी दुनिया का जब न्याय किया जाएगा, तब मनुष्य अपने चर्मचक्षु से ईश्वर देख सकेगा, यह कहना असत्य हैं। ईश्वर के लिए प्रयुक्त की जानेवाली सारी उपमाएँ अस्वीकार करते है चाहे वे उपमाएँ कुरान में ही क्यो न दी गई हों। कुरान के अक्षर-अक्षर को प्रमाण और सत्य माननेवाले धर्मशास्त्रियों का उपर्युक्त मतों से भयंकर विरोध हो जाने से मोटाझली पंथियों का मुँह भी नहीं देखना चाहिए, ऐसा कर्मठ-कट्टर सोचने लगे। मोटाझली लोग भी उतनी ही कट्टरता से सोचने लगे। मोटाझली लोग भी उतने ही कट्टर और अपने विचारों के प्रति धर्मनिष्ठुर हैं, इस कारण ये लोग भी अन्य मुसलमानी पंथियों के कट्टर शत्रु बन गए। वासेल के इस नए पंथ में उपपंथ बनने लगे, उनमें के कुछ खास उपपंथ निम्न हैं-

क. हशेमियन- हाशम के अनुयायियों का मत हैं की जब बुरे का कर्ता ईश्वर होता ही नहीं तब बुरी-से-बुरी चीज, जैसे काफिर (इस्लाम धर्म पर विश्वास न करनेवाले) की उत्पत्ति ईश्वर करे यह कैसे संभव हैं? जो मुसलमान नहीं हैं वे सारे लोग आदमी होते हुए भी कुरान को एकमेव ईश्वरोक्त, परम प्रमाण धर्मग्रंथ न माननेवाले और मोहम्मद पैगंबर को अंतिम ईशप्रेषित न माननेवाले काफिरों की, पापियों की निर्मिति ईश्वर कैसे करेगा? ईश्वर का ईशतत्त्व उससे लांछित होगा, अतः जो मुसलमान नहीं हैं, ऐसे काफिरों की उत्पत्ति ईश्वर ने नहीं की।

ख. नोधेमियन- उदाहरण के लिए इस पंथ का एक उत्तर देना हो तो यह कहें की यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान हैं तो वह केवल अच्छे की निर्मिति करता हैं और बुरे की निर्मिति वह कर ही नहीं सकता ऐसा कैसे कहा जा सकता हैं? अगर बुरा निर्मित करने की शक्ति ही उसे न हो तो फिर वैसा कैसा सर्वशक्तिमान। इसलिए वे कहते हैं की ईश्वर को बुरे का भी निर्माण करने की शक्ति थी, पर इच्छा नहीं थी। इसलिए उसने अच्छे का निर्माण किया और बुरे का किया ही नहीं।

ग. हेयिटियन- इस पंथ का मत था की ईश्वर दो माने जाने चाहिए। एक परमेश्वर नित्य अनंत, दूसरा ईश्वर अनित्य, सांत। वे पुनर्जन्म को भी कुछ अंशों में स्वीकार करते हैं और कहते हैं की जीव जन्मानुसार देहांतर प्राप्त करता हैं। नाना शरीर प्राप्त करते हुए विश्व के अंत के समय जो शरीर होगा उसी शरीर को ही अंतिम न्याय के समय परलोक का दंड या भोग भोगने के लिए स्वर्ग या नरक भेजा जाएगा।

घ. मोझदारी- आचार्य मोझदारी के अनुयायी। ईश्वर को बुरा निर्माण करने की शक्ति नहीं हैं इस मान्यता का का यह पंथ इतना विरोधी था की सर्वशक्तिमान ईश्वर असत्यवादी और अन्यायी भी हो सकता हैं ऐसा वो मानते थे। उनकी इस ईश्वर निंदा से अन्य पंथ के लोग इतने नाराज हो जाते हैं की उनका उपर्युक्त मत सुनना भी पाप मानकर तौबा-तौबा करते हैं। कुरान का जो वाक्य गायत्री जैसा पवित्र माना जाता हैं, वह वाक्य हैं- उस एक ईश्वर के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं हैं। उसी वाक्य का उच्चार भी मोझदारी आचार्य धर्मबाह्य, महापाप मानते हैं, क्योंकि इस में किया गया दूसरे ईश्वर शब्द का उपयोग भी इन्हे एकेश्वर वाद के विरोधी लगता है। एकेश्वर पंथ के लोगों को वह उच्चार भी असह्य हो जाता हैं। मोझदार कहता था- हमारे पंथ द्‌वारा किया गया कुरान का अर्थ ही सही होने से जो मुसलमान नहीं हैं, उनके सहित अन्य पंथों के वे मुसलमान जो कुरान का अलग अर्थ लगाते हैं, वे सबके सब पतित, नीच एवं धर्मशत्रु माने जाकर नरक में ही भेजे जाएँगे। यह सुनकर एक मुसलिम भिन्न पंथीय आचार्य ने व्यंग्य से मोझदार से पूछा- कुरान में वर्णित पृथ्वी और आकाश से निर्मित विस्तृत, सुविशाल स्वर्ग मोझदार और उसके दो-चार अनुयायियों के लिए ही हैं क्या?

ड. बाशेरी- बाशेरी का कथन हैं की सर्वशक्तिमान ईश्वर चाहे तो किसी मनुष्य की बुद्धि में ऐसी दुर्भावना भर सकता हैं की उसे नरक में ही जाना पडे। परंतु ऐसा कृत्य करने के बाद भी वह अन्याय हैं, कहना पडेगा। सारे मानव मुसलमान हो जाएँ ऐसी सद्‌बुद्धि उनमें भरना ईश्वर के हाथ में होते हुए जो मुसलमान नहीं हैं, उन दुष्टों के लिए नरक का निर्माण करने की क्रूरता टालना ईश्वर के हाथ में था। पर ईश्वर ने नरक का निर्माण किया और मानव को स्वतंत्र इच्छाशक्ति दी। इस सबसे ईश्वर केवल अच्छे का निर्माता हैं, बुरे का नहीं। यह अन्य धर्मशास्त्रियों का मत झूठा साबित होता हैं।

च. थमामी- थमामी के अनुयायी यह कहते हैं की पापियों को अनंत काल तक नरक में सडना चाहिए। अन्य मुसलमानी आचार्यों का यह कहना असत्य हैं की नरक दंड का कुछ काल बाद अंत हो जाता हैं। अंतिम प्रलय के दिन केवल मुसलमान ही नहीं, वे मूर्तिपूजक तो भयंकर नरक में पडेंगे-ही-पडेंगे, परंतु ईसाई, ज्यू, पारसी आदि सारे नास्तिक, जो मुसलमान नहीं हैं, उन सबका सत्यानाश कर ईश्वर उन्हें मिट्टी में मिला देगा।

छ. कादेरियन- ईश्वर केवल अच्छाई का निर्माता हैं, बुराई का नहीं इस पक्ष का यह पंथ हैं। अर्थात् बुराई का निर्माता सैतान हो जाता हैं, इस तरह दो निर्माता हो जाते हैं। अन्य मुसलमान इसीलिए इस पंथ को पारसियों के द्‌वैंत पाखंड को माननेवाले पतित मानते हैं।

६. सेफेशियन-इस पंथ के भी कुछ उपपंथ हैं, परंतु यहाँ तीन पर ही विचार प्रस्तुत हैं-

क. आशारियन- इनके मत से ईश्वर का केवल गुणधर्म ही नहीं अपितु रूप-वर्णन भी कहना धर्म सम्मत हैं। कुरान में वर्णन हैं की 'ईश्वर सिंहासन पर बैठता हैं। ईश्वर कहता हैं मैं अपने हाथ से निर्माण करता हूँ, मेरी दो अंगुलियों में विश्वसनीय लोगों के हृदय हैं।' ऐसे सैकडों कथन चूँकि कुरान में हैं, इसलिए वे सत्य ही हैं। उनको केवल आलंकारिक नहीं कहा जा सकता? वैसा वास्तव में होता तो कुरान में स्पष्टतः कहा जाता। ईश्वर के हाथ अंगुलियाँ आदि अवयव हैं, परंतु वे कैसे हैं? यह कोई कहे नहीं। इतना ही नहीं, कुरान पठन करते हुए, अपने हाथ से मैंने उसका निर्माण किया- यह ईश्वर वाक्य पढते समय यदि कोई अपना हाथ आगे बढाकर अभिनय करता हैं तो वह भी पाप हैं, क्योंकि ईश्वर का हाथ मनुष्य जैसा हैं-ऐसा उससे सूचित होता हैं। इतना ही नहीं, अपितु कुरान के अरबी शब्द, जो हाथ, पैर, अंगुली आदि ईश्वरीय अवयवों के लिए उपयोग में लाए गए हैं, उनका अनुवाद अन्य भाषाओं में हाथ, पैर, अंगुली न कर वहाँ उन्हीं अरबी शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। न जाने उनका दैवी अर्थ प्राकृत परभाषा में चूक जाए। ईश्वर मनुष्याकृति हैं ऐसा कहने का महापाप हो जाए।

ख. मूशाबेही- इस उपपंथ को उपर्युक्त मत मान्य नहीं हैं। कुरान में ईश्वर के मुख से जो शब्द निकले हैं, वे अक्षर-अक्षर सच माने जाएँ, ईश्वर मनुष्य से पूरी तरह असदृश्य हैं ऐसा मानने का कोई कारण नहीं हैं। उसके अवयव हैं, ऊपर-नीचे आना-जाना ही नहीं, ईश्वर को मनुष्य रूप धारण करना सहज संभव हैं। जिब्रील नामक देवदूत मनुष्य रूप धारण करता था यह स्वयं पैगंबर साहेब कहते हैं और यह भी स्पष्ट रूप से कहते हैं की ईश्वर मुझे सुंदर रूप में दिखा। मोसेस के साथ भी वह साक्षात आकार बोला था। कुरान के ऐसे अनेक वाक्यों का अर्थ अक्षरक्षः न लेना महापाप हैं।

ग. कैरामियन- इस उपपंथ के लोग, कुरान में ईश्वर का जो वर्णन आया हैं, उसके शब्दों के अर्थ को स्वीकार करते हुए इतना आगे निकल जाते हैं की वे मानते हैं की ईश्वर साकार, सावयव और ऊपर-नीचे से समर्याद भी होना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं वह ऊपर की ओर अनंत हैं, परंतु नीचे की ओर से मर्यादित हैं। ऐसा न माने तो ईश्वर नीचे आया, बैठा आदि कुरान वाक्य झूठे पड जाएँगे। ईश्वर को मनुष्य अपने हाथों से छू सकता हैं, अपने चर्मचक्षु से देख सकता हैं, उसके भी आगे जाकर इस पंथ के कुछ आचार्य कुरान के आधार पर यह निश्चित करते हैं की हाथ, पैर, सिर, जीभ आदि अवयव और शरीर होते हुए भी वह मनुष्य के शरीर से कुछ अलग हैं। क्योंकि सिर से वक्षस्थल तक वह भरा हुआ नहीं हैं। वक्षस्थल से नीचे भरा हुआ हैं और उसके बाल काले और लहराते हैं। इस सबका आधार कुरान हैं, क्योंकि उसमें मोहम्मद पैंगबर स्पष्टता से ईश्वर के संबंध में, 'ईश्वर बोला, चला, बैठा, ईश्वर ने मेरी पीठ पर हाथ की अंगुलियों से स्पर्श किया, तब वे अंगुलियाँ शीतल लगीं' ऐसा वर्णन करते हैं और कहते हैं की ईश्वर ने अपने स्वयं जैसा ही मनुष्य बनाया अर्थात् ईश्वर से मनुष्य की दैहिक सादृश्यता न मानी गई तो कुरान झूठा पड जाएगा।

७. खारेजायी- इस पंथ की उत्पत्ति राजनीतिक प्रश्न से हुई। खारेजायी का मत था की मुसलिम सत्ता और धर्म का मुख्य, खलीफा या इमाम होना ही चाहिए, ऐसा नहीं हैं। यदि इमाम नियुक्त करना ही हो तो वह न्याय-निष्ठुर एवं उत्कृष्ट हों। मोहम्मद पैगंबर के कोरेश वंश का ही व्यक्ति खलीफा या इमाम हो सकता हैं- ऐसा जो शिया मुसलमान कहते थे वह उसे स्वीकार नहीं था। खलीफा चुनने का अधिकार मुसलमानों को न होना भी उसे मान्य नहीं था। खलीफा अली से द्वेष करते हैं, प्रार्थना के समय उसे शाप देते हैं, ऐसे धार्मिक मतों के कारण अली ने उनका कत्ल किया। इमाम यदि दुराचारी हो तो उसे पदच्युत करना या मार डालना धर्म हैं, ऐसा भी यह पंथ कहता हैं।

८. शिया- यह पंथ खारेखाजी पंथ के एकदम उलटे विचारवाला हैं। खलीफा अली का अति अभिमानी। उसका कहना हैं की इमाम, धार्मिक मुखियाँ कौन बने, इसका अधिकार भीड को नहीं हैं। मनुष्य के मूर्खतापूर्ण बहुमत से उसका चयन कर देने से दुराचारी और बलवान् व्यक्ति भी इमाम बनने लग सकते हैं। वे इसके बहुत से साक्ष्य देते हैं। इमाम और खलीफा के पदों पर कई दुराचारी, शराबी, पापी आदमी आ बैठे। ऐसा मुसलमानी इतिहास हैं ऐसा उनका कहना हैं। इसीलिए वे अली के बाद के सुन्नी खलीफा को महापापी कह शाप देते थे। सुन्नी लोग यही बात उलटकर शियाओं को कहते हैं और उन्हें पाखंडी और काफिर कहने से भी नहीं चूकते। अली का वंश परम पवित्र हैं, इसलिए शिया लोग ऐसा मानते हैं की ईश्वर ने इमाम पद उनके ही वंश में रखा हैं। अली के पुत्र हसन-हुसैन और उनके अनुयायियों का करबला की लडाई में अंत हुआ। सुन्नी लोगों ने जिस दिन यह कत्ल किया शिया लोग उसी दिन को शोक दिन के रूपमें मनाते हैं, ताजिए निकालते हैं। अली के वंश का अंतिम पुत्र अमर हैं, वह लडाई में मारा ही नहीं गया और वह लौटकर आएगा, ऐसी श्रद्धा शिया मुसलमान आज भी रखते हैं। शियाओं के कुछ उपपंथ ऐसा कहते हैं की अली और उसके वंशज इमाम के रूप में ईश्वर ने ही जन्म लिया, वे ईश्वर स्वरूप थे। ईश्वर मनुष्य रूप में अवतार ले सकता हैं। (यह उनकी श्रद्धा हैं) साबाई लोग तो अली को वास्तविक ईश्वर ही मानते हैं। ईश्वर का अवतरण- अलहोलूल होता हैं और मनुष्य की देह में ईश्वर रहता हैं। शिया पंथ का एक उपपंथ ईशाकी तो कहता हैं की अली स्वर्ग और पृथ्वी के भी पहले अस्तित्व में था, वह तो मोहम्मद पैगंबर जैसा ही पैगंबर था।

इन शियाओंसे आगे बढकर सूफी पंथी लोग तो अन्य अनेक मनुष्यों का देवत्व मान्य करते हैं। उनके कई साधु तो कहते ही हैं की हम ईश्वर के समक्ष बातें करते हैं। हम ईश्वर को देखते हैं, हम ही ईश्वर हैं। इस तरह की बातें करना सुन्नी जैसे एकेश्वरवादी मुसलमानों को कितना असह्य होता था, यह बात हुसैन अल हिलाज आदि को कत्ल किया गया, उससे प्रकट होती हैं। वे ईश्वर से साक्षात्कार की या स्वयं ही ईश्वर होने की बातें करते थे। सूफी पंथ में बहुत बडे-बडे साधु हो गए। वेदांती हुए। इन लोगों का तत्त्वज्ञान कुछ अंशों में ब्रह्मवाद की और झुकता दिखता हैं।

शिया लोग यह मानते हैं की सुन्नी लोग जो कुरान पढते हैं, उसमें उन्होंने अनेक प्रक्षिप्त घुसेडकर मिलावट कर दी हैं और कुरान अपने मूल सत्य रूप में नहीं हैं। सुन्नी भी वैसा ही कहते हैं, वे भी कुरान में मिलावट किए जाने का आरोप शियाओं पर लगाते हैं। सारांश यह की शिया कुरान सुन्नियों को वह मान्य नहीं, सुन्नियों का कुरान शियाओं को मान्य नहीं। दूसरा अत्यंत विरोध का प्रश्न पैगंबर का हैं। सुन्नियों के विचार में इस्लाम धर्म का अपरिहार्य और मुख्य से मुख्य लक्षण यह हैं की मोहम्मद पैगंबर ही अंतिम, सर्वश्रेष्ठ और परिपूर्ण पैगंबर थे। उनके कहे कुरान के बाहर दूसरा पैगंबर नहीं हैं। परंतु शिया लोग हजरत अली को भी मोहम्मद के बराबर का पैगंबर मानते हैं। कुछ पंथ तो अली को मोहम्मद पैगंबर से भी श्रेष्ठ मानते हैं और कुछ तो उन्हें ईश्वरमय ही मानते हैं। शिया और सुन्नी ऐसे अत्यंत मूलभूत विरोध के कारण एक-दूसरे को काफिर कहते हैं। सुन्नियों के बडे आचार्य तो शियाओं को मुसलमान ही नहीं मानते। अर्थात् यही बात शिया सुन्नियों के लिए कहते हैं।

मोहम्मद पैगंबर के बाद में भी पैगंबर

मेरे बाद कोई भी पैगंबर नहीं होगा, मेरे पूर्व में अब्राहम गोसेज, जीसस आदि अनेक पैगंबर ईश्वरदूत हुए, पर उन्होंने ईश्वर का समग्र संदेश मनुष्य को नहीं दिया और उन्होंने अपने अनुयायियों को जो संदेश दिए वे भी पूर्णता से संगृहित न कर उसमें मिलावट कर बाइबिल जैसे ग्रंथ बनाए। इसलिए समग्र और सत्य संदेश देकर परमेश्वर ने मुझे भेजा। अब भविष्य में कोई अन्य पैगंबर मेरे सिवाय माना न जाए ऐसा मोहम्मद पैगंबर ने बार-बार कहा। यह भी कहा की जो कोई किसी दूसरे मोहम्मद को मानेगा वह मुसलमान नहीं, महापापी हैं। यह इस्लाम के सैकडों धर्मपंथों की प्रतिज्ञा होते हुए मोहम्मद के बाद के मुसलमान पैगंबर कहना वदतो व्याघात मानना चाहिए। पर वास्तविकता यह हैं की स्वयं को मुसलमान कहनेवाले अनेक पंथों के लोग मोहम्मद के बाद भी पैगंबर हुए ऐसा मानते हैं। जिन पुरूषों ने मोहम्मद के बाद भी स्वयं को पेगंबर कहा, ईश्वर का दूत होने का दावा किया, उनमें से कुछ की जानकारी उदाहरण के लिए नीचे दे रहा हूँ-

१. मोसिलेमा- यह मोहम्मद पैगंबर का समकालीन था। अरबों की एक जमात का मुखिया था। अपनी जमात की ओर से मोहम्मद से मिलने गया और इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। बाद में स्वयं को पैगंबर कहने लगा,उसे अनुयायी भी मिले। क्योकी ईश्वर का दूत कौन हैं इस बारे मे, या तो भविष्य या बढचढ कर खुद का प्रचार करना, इसके अलावा कोई प्रत्यक्ष या माप सके ऐसा प्रमाण मिलना असंभव! मोहम्मद पैगंबर की तरह ही मोसिलिमा भी अरबी पद्यों की रचना करने लगा। वह कहता, वह ईश्वरीय हैं। मोहम्मद पैगंबर को इससे बडा गुस्सा आया, वे उसे लुच्चा-झूठा कहते, पर उसके भी अनुयायी बढ रहे थे, इसलिए मोहम्मद की मृत्यु तक उसका कुछ भी नहीं बिगडा। अबूबकर के जमाने में इन दोनों पैगंबरों में सच्चा कौन हैं, इसका निर्णय हुआ। किस विधि से ? ईश्वर ने कोई संकेत दिया इसलिए नहीं, किसी तत्त्व विचार की तुलना से नहीं, आत्मिक या

अन्य कसौटी से भी नहीं, अपितु केवल लाठी के जोर से। लडाई में मोसिलेमा की दस हजार सेना काटी गई, मोसिलेमा भी मारा गया, इसलिए वह आडंबरी पैगंबर साबित हुआ।

२ अल आस्वाद- एक और दूसरी अरब जमात का यह मुखिया था। मोहम्मद का समकालीन। पहले इस्लाम धर्म स्वीकार किया, परंतु फिर स्वयं ही पैगंबर बनने की इच्छा हुई। देवदूत मुझे भी संदेश भिजवाते ह, ऐसा प्रचारित करवाया। नए-नए चमत्कार भी करने लगे। चमत्कारों से प्रभावित होकर यही वास्तव में पैगंबर हैं, ऐसा समझ हजारों लोग मोहम्मद को छोड इनके अनुयायी बने। मोहम्मद पैगंबर जो कुछ आश्चर्यकारक करते उसे जो मुसलमान दैवी चमत्कार कहते वही, और वैसे ही नहीं तो उससे भी अधिक आश्चर्यकारक कृत्य अल आस्वाद करने लगा। तब मोहम्मद साहेब के अनुयायी उसे हाथ की सफाई, जादूगिरी कहते। इसके उलट अल आस्वाद के अनुयायी मोहम्मद साहेब के चमत्कारों को जादू और आडंबर कहते। इस तरह के आरोप-प्रत्यारोप पहले से ही पैगंबरो के प्रकरण में चले आ रहे हैं। परंतु धीरे-धीरे अल आस्वाद प्रबल होता चला गया। मोहम्मद के एक सूबेदार और उसके लडकों को मारकर उसकी पत्नी से ही उसने विवाह किया। फिर इस पत्नी के पिता को भी अल आस्वाद ने मारा। इस सबका बदला लेने के लिए अल आस्वाद की इस पत्नी ने मोहम्मद से मिलकर अपने महल में सैनिक घुसा लिये और अपनी पति का गला घोंटा। अल आस्वाद बडे जोर-जोर से चिल्लाने लगा। पहरेदार उस आवाज को सुनकर सहायता के लिए आए, दरवाजे पर ठक-ठक करने लगे तो औरत ने अंदर से कहा, चुप रहो। सवारी आई हुई हैं, इसलिए यह आवाज आ रही हैं। पैगंबर की पत्नी के ऐसा कहने से पहरेदार चुप हो चले गए। अल आस्वाद का सिर काट मोहम्मद साहेब की सेना को महल में बुला लिया। इस तरह एक नकली पैगंबर रूपी काँटा मोहम्मद साहेब के रास्ते से हट गया। सच्चा पैगंबर कौन हैं**?** यह फिर एक बार तलवार से निश्चित हुआ। जिसकी लाठी मजबूत वह पैगंबर।

३. तोलीहा- इसने भी स्वयं को ईश्वरदूत सिद्ध करने का प्रयास किया।

४. पैगंबरी सेजाज- यह महिला पैगंबर के रूप में ख्यात हुई। उसे हजारों अनुयायी मिले। मोसिलेमा पैगंबरसे उसने विवाह किया, पर फिर वह अलग हो गई और पैगंबर पद का उपभोग करती रही। परंतु उसका पंथ नामशेष हो गया।

५. हाकिम-बिन-हाशम या बुरखेवाला- यह भी अपने को पैगंबर कहता था। सुनहरे बुरके में वह सिर से पैर तक ढका रहता था। उसके अनुयायी कहते की उसका ईश्वरीय तेज कोई नंगी आँखों से देख नहीं सकता था। उसके शत्रु कहते, उसकी एक आँख नहीं हैं और लडाई में चेहरा भी बिगड गया हैं इसलिए मुँह ढके रहता हैं। वह अनेक चमत्कार करता था। एक बार कुएँ से चाँद निकाल कई-कई रातों को प्रकाशित किया, ऐसा उसके अनुयायी कहते। तब से उसे चंद्र निर्माता कहा जाने लगा। ईश्वर का अवतार मान उसकी पूजा भी होने लगी। ईश्वर मनुष्य शरीर में अवतार लेता हैं, अपना यह मत वह कुरान के आधार पर सिद्ध करता था। सुन्नी लोगों

से उसने भयंकर युद्ध किए और उसे अपने मरे सैनिक पुनर्जीवित करने की विद्‌या आती हैं-ऐसा कहा जाता था। उसने घोषणा की की वह अदृश्य होकर फिर अवतार लेगा। एक बार एक किले में मुसलमान द्‌वारा घेरे जाने पर वह अदृश्य हो गया। सुन्नी मुसलमान कहते की उसने स्वयं को जलाकर राख कर दिया। परंतु उसके अनुयायियों को यह विश्वास था की चंद्र निर्माता हाकिम अदृश्य हो गया। उसके अनुयायियों का बडा पंथ श्वेतांबरी या सफेद जामावाले नाम से चालू रहा। मुसलमानी खलीफा के झंडे का रंग काला होता हैं, इसलिए ये सफेद परिधान धारण करते। चंद्र निर्माता पैगंबर फिर से अवतार लेगा और सारी दुनिया पर वह राज करेगा-यह उनका विश्वास हैं।

६. बाबेकी करमातियन, इशमेलियन, बाबी- ऐसे अनेक पंथों के संस्थापक और मोहम्मद के बाद के मुसलमानों में से पैदा हुए पैगंबर बहुत होते आए हैं। हर पचास वर्ष बाद एक नया पैगंबर उत्पन्न होता हैं और अपने अवतार-कार्य के संगत वह कुरान के अर्थ लगाता हैं या फिर मुझे ईश्वर ने नया कुरान देकर भेजा हैं, ऐसा कहनेवाला और जिसके पीछे हजारों लोग लगे हैं, ऐसा पुरूष पैदा होता ही हैं। मुसलमानों के इतिहास में मोहम्मद पैगंबर के समय से यह क्रम आज तक चालू हैं। बाबी, करमातियन और इशमेलियन आदि ने तो ईसाइयों को इतना विरोध नहीं किया जितना मुसलमानों का किया। हजारों मुसलमानों को मार डाला। हसन सबाह की अधीनता में इशमेलियन लोगों ने अपने इमाम को अवतार मानकर उसके आदेश की हत्या करनेवाला एक धर्म संप्रदाय ही प्रचारित किया। इस हसन नाम से अंग्रेजी में assasin शब्द बना जिसका अर्थ होता हैं हत्या करनेवाला। बाब नामक पैगंबर ने मोहम्मद पैगंबर से जुडा मंत्र ही स्वयं से जोडकर 'ईश्वर के सिवाय ईश्वर नहीं और बाब ही ईश्वरप्रेषित पैगंबर हैं' यह मंत्र नमाज के समय कहना शुरू करवाया।

उपर्युक्त सुन्नी, शिया, बहावी आदि नाना पथों, उपपंथों का झमेला और लडाइयाँ भारतीय मुसलमानों के इतिहास में प्रारंभ से जारी हैं।

एक ताजा पैगंबर

इन पचास वर्षों के अंदर का एक ताजा उदाहरण हैं पंजाब के कादियानी पंथ के मुसलमानों का। हजरत अब्दुल मिर्जा कादियानी नामक एक व्यक्ति को साक्षात्कार हुआ की वह स्वयं अली अकबर पैगंबर हैं। उनके पूर्व जो पैगंबर हुए उनमें कादियानी महोदय ने यीशू, मोहम्मद, राम, कृष्ण आदि हिंदू अवतारों की भी गणना की। वेद को भी ईश्वरप्रणीत ग्रंथ माना, जैसाकि कुरान हैं। परंतु पहले के सारे पैगंबर और धर्मग्रंथ पूर्ण कार्य नहीं कर सके, इसलिए ईश्वर ने मिर्जा अब्दुल कादियानी, जो सबसे अंतिम पैगंबर हैं, को भेजा। वे अपने को फिर भी मुसलमान कहते। परंतु सारे मुसलमान उन्हें काफिर मानते हैं। काबुल की ओर भेजे गए उनके प्रचारकों को पत्थरों से मार-मारकर मारने का दंड दिया गया था।

समापन

उपर्युक्त सब पंथों, उपपंथों के मत मुसलमानों के ही शब्दों में, सच-झूठ अच्छा-बुरा इस तरह की कोई भी चर्चा न करते हुए, दिए गए हैं, उनसे कुरान संपूर्ण मुसलमानों का अनन्य धर्मग्रंथ हैं और वे सारे उसे एक ही ईश्वर प्रदत्त पुस्तक मानते हैं, यह लोकभ्रम कितना तथ्यहीन, खोखला, बेपेंदे का हैं, यह स्पष्ट हो जाता हैं।

कुरान शब्दशः एक नहीं हैं। परस्पर विरूद्ध अर्थ कहनेवाले सात सौ पंथ मुसलमान धर्मशास्त्रियों ने ही गिने हैं। सात सौ में से हर पंथ कुरान का अपना ही अर्थ सच और ईश्वरीय मानता हैं और अन्य सारे मुसलमानी पंथों को काफिर, धर्मविहीन, पाखंडी कहता हैं और शाप भी देता हैं की वे सारे नरकगामी होंगे। माने वास्तविकता देखते हुए कुरान सात सौ हैं, एक नहीं।

खताबियन पंथ

अब्दुल खताव नामक मुसलमान आचार्य का पंथ एक ही कुरान का अत्यंत विरोधी अर्थ लगाने की परंपरा का शिरोमणी पंथ दिखता हैं। उसका मत हैं की कुरान का अर्थ शब्दशः न लेकर कहीं-कहीं लाक्षणिक रूप से भी लिया जाना चाहिए। वैसा लाक्षणिक अर्थ लगाया जाए तो जो ईश्वरीय संदेश मिलता हैं वह यह की ईश्वर द्‌वारा कुरान में बताए स्वर्ग हैं लोगों के समस्त सूख और भोग और नरक है दुःख और रोग। वह कहता हैं, प्रलय की बात झूठ हैं, विश्व ऐसा ही चलेगा। इसलिए 'मद्यं मांसंच मीनंच मुद्रामैथुनमेव च' का यथेच्छ उपभोग करना ही धर्म हैं। इस दुनिया में जो-जो कष्ट देनेवाली, उपवास आदि बातें हैं वही अधर्म हैं। ((Sale's Koran Introduction पृष्ठ १३५) 'दिन में पचास बार नमाज पढना चाहिये, पाँच से क्या होगा?' इस तरह एक ही कुरान का कर्मठ, कठोर अर्थ लगानेवाला 'करमाती' पंथ हैं तो उसी कुरान का उपर्युक्त ढीला अर्थ लगानेवाला 'खताबियन' पंथ भी हैं।

पुरूषबुद्धि एवं तर्क को अप्रतिष्ठित, अस्थिर मानकर अपौरूषेय, अनुल्लंघ्य तर्क से परे, देवदत्त धर्मग्रंथ को प्रमाण मानना ही उचित हैं, ऐसा कहनेवालों ने कुरान की गत भी वेद या बाइबिल जैसे कैसे बनाई यह ध्यान में लाया जाए। ग्रंथ एक ही कुरान, उसे त्रिकाल बाधित और अनुल्लंघ्य माना, इतना ही नहीं, जिस किसी ने उसे वैसा नहीं माना तो लाठी के जोर से मनवाया, फिर भी कुरान का अर्थ लगाने के लिए मनुष्य के पास पुरूषबुद्धि के सिवाय और कोई साधन न होने से एक कुरान के सात सौ कुरान हो गए।

किसी भी ग्रंथ को ईश्वर प्रदत्त मानें तो मनुष्य की प्रगति एवं विज्ञान के पैरों में बेडी डालकर धर्मोन्माद खुला घुमता ही हैं।

इससे अच्छा हैं यह मानें की कुरान, पुराण, वेद, अवेस्ता, बाइबिल, टालमद आदि सारे ग्रंथ मनुष्यकृत हैं। उस विशष परिस्थिति में ज्ञान और अज्ञान से संपृक्त परंतु लोकहित बुद्धि से प्रचारित होने से आदरणीय मानकर हम सब उनका अध्ययन करें। प्रयोग करते हुए आज जो उसमें अतथ्य दिखें, अहितकारी लगे, उसे छोड दें। तथ्य एवं हित जो हो, वह सबकी सामूहिक मानवी संपत्ति हैं,यह स्वीकारना ही इष्टकर, तथ्यकर और हितकर हैं।

(किर्लोस्कर, जुलाई-अगस्त १९३५)